सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

ोग सिद्धान्त एवं
ाध्यात्म का
तिपादक मासिक

वर्ष : 43, अंक : 8
नवम्बर - 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह गुणो को अतिक्रम कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

◆ ◆ ◆

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(कठोपनिषद् 1/2/24)

अर्थात् प्राणी जब तक दुराचार से निवृत्त नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से भी परमात्मा की प्राप्ति नही कर सकता।

◆ ◆ ◆

यथा नद्यः स्यन्दमानाःसमुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रुपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रुपादविमुक्तः परात् परं पुरुषं मुपैति दिव्यम्।।

(मुण्डकोपनिषद् 3/2/8)

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ अपने नाम रूप को त्याग कर समुद्र में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार विद्वान नाम–रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रह।।

(चाणक्य नीति)

हमारा शरीर नाशवान है, धन सम्पदा आनी–जानी है सदा रहने वाली नहीं है, मृत्यु हमेशा सिर पर मंडराती रहती है। अतः हमारा कर्तव्य है कि धर्म का संग्रह (आचरण) करें।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग। ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 43 अंक : 8

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण जिनकी दिव्य स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करने वाले लोग अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तत्कालीन चित्त से योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते, इन भगवान विष्णु को नमस्कार है।

नवम्बर, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. भगवद्भक्ति का प्रभाव –कृष्ण कुमार पाण्डेय 11
4. हार नहीं होती – मोहन स्वरूप योगी 14
5. श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव पर कृपा कोर – केशव देव उपाध्याय 15
6. चंचल मन से योग सिद्धि कैसे करें –डॉ. जे.पी. शर्मा 19
7. बुद्धि एक विश्लेषण : काण्ट एवं योग के परिप्रेक्ष्य में - रमेश सिंह 27
8. श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 32
9. कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ – डॉ. विजय सिंह 35
10. अपना जीवन श्री चरणों में जोड़ दिया – जगदीश राए बंसल 40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं उपाय प्रत्यय

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

इससे पूर्व पिछले प्रकरणों में योगियों को अनुभूति-ज्ञान कराने वाले भव प्रत्यय एवं उपाय प्रत्यय इन दो प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया था। भव प्रत्यय में साधक को जन्म से ही योग-ज्ञान की प्रतीति होने लगती है और उसे पौर्वदैहिकबुद्धि-संयोग मिल जाता है, जिसके फलस्वरूप उसे योग के चमत्कारिक अनुभव हो जाते हैं। यह भव प्रत्यय का परिणाम है। इसके अतिरिक्त-

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार उपाय प्रत्यय का अवलम्ब लेने वाला योगी शनैः-शनैः दृढ़तर अभ्यास करता हुआ कालान्तर में प्रज्ञाविवेक को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त एक और महान साधन है जो पुण्यकर्माजीवों को पुण्य प्रारब्ध के फलस्वरूप सिद्धों की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है। वह साधन इस प्रकार का है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर लेता है। उसका नाम है - **शक्तिपात योग** अथवा **सिद्धयोग**। यह योग मनुष्य को सिद्धानुकम्पा से ही प्राप्त होता है। रही बात यह कि साधक सिद्धयोग का कितना अधिकारी है, वह कब तथा कैसी कृपा प्राप्त करेगा ? यह उसकी पात्रता पर निर्भर करता है। वैसे यह साधन इस प्रकार का है जो एक बार प्राप्त हो जाने पर साधक को मोक्ष द्वार तक खींचे ही चला जाता है। जब तक उसकी साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक उसे बार-बार बुद्धिसंयोग मिलता रहता है। योग शिखोपनिषद् में ऐसा लेख मिलता है:-

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा, धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवोऽपि, न मोक्षं लभते विधे।।

मनुष्य भले ही ज्ञाननिष्ठ हो, विरक्त हो, धर्मज्ञ हो या जितेन्द्रिय हो किन्तु बिना योग के उसे मुक्ति प्राप्त होती ही नहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य पुरुषार्थी बना रहे न कि वह अल्हड़, आलसी बनकर अपने आपको त्यागी घोषित कर दे। जो लोग बाह्योपचारों को त्याग कर अपने आपको त्यागी घोषित करते हैं वे यथार्थ त्यागी नहीं हैं, प्रत्युत् दम्भी हैं। क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ और मन

कुछ न कुछ हरकतें करते ही रहते हैं। इन लोगों के लिये भगवान श्रीकृष्ण चन्द ने गीता में अपने मुखारविन्द से स्पष्ट शब्दों में कहा है:-

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचार: स उच्यते।।

कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके जो लोग मन से विषयों का चिन्तन करते रहते हैं वे लोग दम्भी कहलाते हैं।

अत: मनुष्य को चाहिए कि वह कर्मफल की इच्छा न रखता हुआ सत्कर्मों को करता जाये, जिससे उत्तरोत्तर उसकी पुण्यवृद्धि होती रहे। इस विषय में श्रीभगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है:-

यज्ञोदानं तप: कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान एवं तप आदि कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। अत: ये छोड़ने नहीं चाहिए प्रत्युत् निष्काम भाव से कर्त्तव्य बुद्धि से करते ही रहना चाहिए।

इस प्रकार जो लोग निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करते हैं एवं शुभ कर्मों का आचरण करते हैं वे लोग अवश्य ही सिद्धानुग्रह के भाजन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने मन में वेदान्त की धारणाओं को दृढ़ करते रहते हैं, उनकी पुण्यवृद्धि हो जाने के पश्चात् उन्हें भी सिद्ध संगति प्राप्त हो जाती है। **योगशिखोपनिषद** में कहा गया है:-

देहान्ते ज्ञानिभि: पुन्यात्पापाच्च फलमाप्यते।
ईदृशं तु भवेत्तद् भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।
पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
तत: सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।।

निष्काम कर्मयोग के अभ्यास से विविध प्रकार के पुण्यों को उपार्जित करता हुआ व्यक्ति उत्कृष्ट पुण्य बढ़ जाने पर अवश्य ही सिद्धसंगति को प्राप्त कर लेता है और फिर सिद्धानुकम्पा से वह योगी बनता है। जब तक मनुष्य सिद्धानुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच पाता।

हमारे शास्त्रों में सिद्धों की भी दो श्रेणियाँ मानी गई हैं। एक श्रेणी वह है जिसमें योगी दृढ़तर अभ्यास करते-करते सिद्धियों को पा जाते हैं और '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्**' की सामर्थ्य वाले सिद्ध बन जाते हैं। दूसरे सिद्ध वे लोग हैं जो अनादिकाल से ही सिद्ध हैं, जिनकी सिद्धि में

कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये लोग **अनादिकालीन महासिद्ध** कहलाते हैं। मनुष्य किसी भी प्रकार के अनुग्रह का भाजन हो, सिद्ध संगति परम आवश्यक है।

हमारा इतिहास यह बतलाता है कि यहाँ के भक्त समुदाय ने येन केन प्रकारेण सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके ही अपने को सफल बनाया। इसलिए साधक के लिए सिद्धानुग्रह की प्राप्ति परम आवश्यक है। चाहे वह अनादि सिद्ध ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि का अनुग्रह भाजन बने या हिमालय के किसी योगिराज की शरण प्राप्त करें। इस प्रकार सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष द्वार की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है:-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवेष वृणुते तेन लभ्या, तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

यह आत्मा न प्रवचन करने से, न बुद्धि कौशल से और न अत्यधिक शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त होता है प्रत्युत "**यमेव एष वृणुते तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्**" अर्थात् जिसको यह स्वयं स्वीकार करता है उसी के द्वारा इस आत्म-तत्व की प्राप्ति हुआ करती है। जिसका यह स्वयं वरण कर लेता है उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है। स्वयं वरण हो जाने के बाद मनुष्य का मोक्ष अवश्यम्भावी है। जिस साधक का स्वयं वरण हो चुका है उसे इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसका शरीर परमात्मा का घर हो जाता है, उसमें वह अभेद रहा करता है। इन्हीं भावों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्नांकित चौपाई में स्पष्ट किया है:-

सोई जाने जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं ह्वै जाई।।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि सिद्धानुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य अवश्य ही कृतार्थ हो जाता है एवं अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। बहुत से लोग इस प्रकार की बातें करते दिखाई देते हैं कि "भाई! यह तो ठीक है कि तुम्हारे यहाँ गुरूदेव की अनुकम्पा से ध्यान लग जाता है, किन्तु कुछ दिन बाद ही उनकी स्थिति जाती रहती है, इस प्रकार के शक्तिपात से क्या लाभ? जिससे दस-पाँच दिन अच्छी-अच्छी अनुभूतियाँ होने के बाद साधक खाली हो बैठे, जो क्षणिक आनन्द दिखाकर शान्त हो जाये।"

इस बात को हम ऊपर समझा चुके हैं कि सिद्धानुग्रह ही वस्तुतः मनुष्य के परम श्रेय का मुख्य साधन है, किन्तु साधक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी नियमानुवर्तिता में बिल्कुल पक्का रहे। उपाय प्रलय में बताये गए सभी नियमों का यथार्थ रूप में पालन करे। इसी प्रकार का आदेश अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में दिया है:-

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

जिसका आहार एवं विहार संयमित है, जो अपनी समस्त चेष्टाओं पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जो ठीक समय पर सोता है और ठीक समय पर उठ जाया करता है उसके लिए ही योग दु:खविनाशक और सुख-समृद्धि का दाता हुआ करता है। अत: सिद्धयोग के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह जगदात्मा द्वारा आदिष्ट उपरोक्त नियम को 'उपाय-प्रत्यय' के अन्तर्गत समझे और उसका पूर्णतया पालन करे। जो मनुष्य नियमानुवर्तिता का पक्का नहीं है, सोने के समय पर सोता नहीं, जागने के समय जागता नहीं, नियत समय पर भोजन नहीं करता तथा जिसकी कोई भी चेष्टा साधना के अनुकूल नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि वह परमात्मा की कृपा का बहुत दुरुपयोग कर रहा है और अपने बहुमूल्य समय को व्यर्थ खो रहा है।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरूकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

जिस पुण्यकर्मा जीव को अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर जो कि भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका के समान है, सुलभता से मिल जाये और फिर कर्णधार पूज्य गुरुदेव सिद्धयोग के दाता मिल जायें, अनुकूल वायु के रूप में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाये फिर भी यदि वह मनुष्य संसार सागर को तरने का प्रयास नहीं करता तो वह एक प्रकार का आत्म-हत्यारा है।

अत: जो लोग स्वस्थ, सुन्दर और सुदृढ़ शरीर वाले हैं, जो सिद्धानुग्रह के रूप में सामर्थ्यवान गुरू की पूर्ण कृपा प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्हें भगवत् कृपा से सभी साधन उपलब्ध हैं फिर भी यदि वे आलसियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो निश्चय ही वे अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खो रहे हैं।

उपाय प्रत्यय के अन्तर्गत उन्हीं उपायों का निर्देश किया गया है जिनका अवलम्ब लेना प्रत्येक साधक के लिए निहायत जरूरी है।

ईश्वर के एवं गुरुदेव के परमानुग्रह को प्राप्त करके जो साधक नियमानुवर्तिता का पक्का है, अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगा रहता है वह अवश्य ही परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। जो लोग इस प्रकार अभ्यास नहीं करते वे लोग उस महान कृपा को प्राप्त करके भी यथेष्ट लाभ से वंचित रह जाते हैं।

मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। सिद्धानुग्रह-भाजन एक व्यक्ति एक स्थान पर ध्यान योग का अभ्यास किया करता था। वह जब भी ध्यान में बैठता अनायास ही उसका ध्यान लग जाया करता था और बड़ी-बड़ी दिव्य अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती थीं। उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि इस ध्यान योग में कोई विशेष प्रयत्न तो करना नहीं पड़ता, केवलमात्र थोड़ा सा चिन्तन

किया और अनुभूतियाँ जारी हो गई। इसमें कोई खास तत्त्व की बात नहीं है। जब भी हम चाहेंगे ध्यान लगा लेंगे। यह विचार कर उसने अपना अभ्यास छोड़ दिया। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उसका मन इस प्रकार का अभ्यासी बन गया था कि जब भी वह अभ्यास करता अनुभूतियाँ जारी हो जाया करतीं। अभ्यास छोड़ने के एक महीने पश्चात उसने पुनः मन को एकाग्र करके देखा तो उसी प्रकार की एकाग्रता हो गई और उसका ध्यान लग गया। इस घटना से उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि ध्यानाभ्यास में नियमानुवर्तिता का पालन करना जरूरी नहीं है। मैं जब भी अभ्यास में बैठूँगा तभी मुझे ध्यानानुभूतियाँ हो सकती हैं।

यह सोचकर उसने लम्बे समय के लिए अपना ध्यानाभ्यास छोड़ दिया और लौकिक कार्यों में उलझा रहा। परिणामस्वरूप उसकी ध्यानस्थिति जाती रही और वह खाली का खाली रह गया।

यह घटना योग साधकों के लिए एक प्रकार की चेतावनी है। मैं अपने सिद्ध-योग के विद्यार्थियों को यह संकेत कर देना चाहता हूँ कि उनको अपने अभ्यास में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देनी चाहिए। प्रत्युत् उत्तरोत्तर अभ्यास को बढ़ाते ही रहना चाहिए। जिससे गुरुदेव द्वारा किया गया शक्तिपात उनके परम श्रेय का हेतु बन सके। साथ ही भर्तृहरि जी के निम्नांकित श्लोक को बार-बार पढ़ना एवं मनन करना चाहिए:-

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहंयावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

■■■

असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।।

(वन. 1/29)

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं हो पाते।

ध्यान क्या ? व कैसे ?

आचार्य ब्रह्मचारी श्री द्वारकालाल

ध्यै, चिन्तायाम् धातु से चिन्तन के अर्थ में ध्यान शब्द बनता है। पातञ्जल योग दर्शन में अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत ध्यान को सातवें अंग के रूप में परिगणित किया है। ध्यान की परिभाषा देते हुए पतञ्जलि भगवान कहते हैं 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' अर्थात् एक लक्ष्य पर एक ही विषय का बारम्बार चिन्तन करना ही ध्यान है। इस प्रक्रिया में चिन्तन की धारा टूटनी नहीं चाहिए। प्रत्यय नाम ज्ञान का है। एक ही प्रकार के ज्ञान की अविरल धारा बहने का नाम ही ध्यान है। यह क्रिया चक्षुओं को बन्द करके ही की जा सकती है। साधक का मन अपने लक्ष्य पर टिका रहे इसके लिए पतञ्जलि जी महाराज ने कुछ आधार बताये हैं। इन उपायों का अवलम्ब लेकर मन को एकाग्र किया जा सकता है। इनमें से एक सूत्र है– 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य' अर्थात् प्राण के रेचक और कुम्भक के अभ्यास से प्राण का संयमन करके मन को एकाग्र किया जा सकता है। इस प्रकार बार–बार रेचक कुम्भक के अभ्यास से प्राण संयमन होता है जिससे इच्छानुसार प्राणों को रोका व छोड़ा जा सकता है। प्राण निग्रह से मन का स्वतः निग्रह हो जाता है।

'यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोऽपि लीयते' जहाँ प्राण लय होता है वहाँ मन भी लय हो जाता है। प्राण और मन एक दूसरे के अनुगामी रहा करते हैं। चित्त की एकाग्रता में प्राण संयमन की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। योग वाशिष्ठ में वशिष्ठ जी महाराज ने भगवान् श्रीराम को मन की एकाग्र के लिए प्राण के संरोध का उपदेश दिया है। योग साधना में हठयोग प्रणाली में प्राण निरोध के विज्ञान को जानकर समाधि की ओर जाने का संकेत योगियों ने दिया है। मन को एकाग्र करने का दूसरा आधार बताया है ' विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी' विषयवती प्रवृत्ति के उत्पन्न हो जाने पर मन को उस विषय पर एकाग्र करने से लयता मिलती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये विषय कहलाते हैं। ये विषय दो प्रकार के माने गये हैं। विषय का एक रूप है दिव्य तथा दूसरा है अदिव्य। एक रूप साधक को योग की ओर समाधि की ओर ले जाता है तथा मुक्ति की ओर ले जाता है यह दिव्य रूप है विषय का। दूसरा विषय का रूप अदिव्य है जिससे भोग सुख मिलता है किंतु इसका परिणाम दुःख है। जब साधक विषय के दिव्य रूप को आधार बनाता है तो इस विषय के इन्द्रिय विशेष को अन्तराभिमुख किया जाता है। शरीर के अन्दर विशेष भाग में मन को एकाग्र करने से दिव्य

आने लगती है तब साधक दिव्यता की ओर उन्मुख हो जाता है। उदाहरण के तौर पर शब्द एक विषय है और इन विषय का इन्द्रिय कर्ण है। जब हम बाहर के शब्दों को सुनते हैं तो हम उस शब्द के द्वारा संसार की ओर भोग की ओर आकृष्ट किये जाते हैं जो दुःख देने वाला है। बाहर के कामोत्तेजक गाने मनुष्य को भोगों की ओर खींच लेते हैं जो पतन का मार्ग है यही कर्णेन्द्रिय का अदिव्य रूप है जो भोग रूप है। इसी कर्णेन्द्रिय को हम योग पद्धति से अन्तर्मुखी करके भीतर के नाद का श्रवण करने लगते हैं तो मन नाद में एकाग्र होने लगता है। मन्त्र जाप का भी यही उद्देश्य है। जप करते–करते साधक नाद साक्षात्कार करने लगे तो एकाग्रता मिलती है। 'नास्ति नाद सदृशोलयः' नाद के समान मन को लयता देने वाला दूसरा साधन नहीं है। इसलिए उपनिषद में तथा योग के ग्रन्थों में नाद लय की महिमा का गान किया गया है। इस प्रकार से शब्द एक विषय के दिव्य और अदिव्य भेद से दो रूप हो जाते हैं। दिव्य रूप योग है तथा अदिव्य रूप भोग।

भगवान् ने गीता में कहा है–

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनयएव ते।
आद्यन्त वन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

अर्थात् संस्पर्शज भोग दुःख मूलक हैं तथा आदि अन्त वाले होने से नश्वर हैं इसलिए योगी लोग इनमें रमण नहीं करते। इस प्रकार ब्राह्य विषयों में आसक्ति रहित साधक ध्यानजन्य सुख को प्राप्त करता है। ऐसा ब्रह्मयोग युक्तात्मा योगी अक्षय सुख का अनुभव करता है। उपनिषद् में भी (कठ) आवृत्त चक्षुः अमृतत्वमिच्छन– कहकर यही बताया गया है कि योगी समाधि रूप अमृत का पान करना चाहता है तो उसे चक्षुः आदि इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके भीतर के दिव्य विषयों का साक्षात्कार करके समाधि की ओर जाने का प्रयास करना चाहिए। भगवान् ने मनुष्य ज्ञानेन्द्रिय भोग और योग (अपवर्ग) दोनों के लिए दी है। ज्ञानेन्द्रिय का दिव्य रूप अपवर्ग दाता है और अदिव्य रूप भोग दुःख व संसार को देने वाला है। सिद्ध गुरुदेव अपने शिष्य के मन को विषय के दिव्य रूप में समाहित कर देते हैं जिससे साधक भीतर का सुख प्राप्त करता है समाधि द्वार की ओर चला जाता है।

इस प्रकरण में मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है जो गुरुदेव के श्री मुख से सुना था। श्री आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज की एक शिष्या अमृतसर में थीं जिसका नाम 'पेडो देवी' था। उसको प्रभु जी ने 'गन्धतन्मात्र' में समाहित कर दिया था। फलतः उसे गन्धोऽहम् की अनुभूति नित्य बनी रहती थी। उसके भौतिक शरीर से भी दिव्य सुगन्ध आती थी। लोगों को लगता था कि ये सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करती है किंतु वह धार्मिक विचारों की महिला थी। मन की एकाग्रता के बल से उसे सूक्ष्म शरीर से गमनागमन की योग्यता प्राप्त हो गई थी और अपने ध्यानी गुरु बहिनों के ध्यान में सूक्ष्मरूप से आयाजाया करती थी। एक दिन एक शिष्या ने कहा – 'प्रभुजी! मैं सुबह जल्दी नहीं उठ पाती हूँ। बहिन पेडो देवी प्रातः

अन्य गुरु बहिनों को जगा देती हैं आप उनसे कहें कि मुझे भी उठा दिया करें।' श्री प्रभु जी ने कहा– अच्छा ठीक है, उठा दिया करेंगी।' दूसरे दिन प्रातः चार बजे पेडो देवी उस गुरु बहिन को जगाने के लिए सूक्ष्म से पहुँच गई और उसे एक चाँटा मारते हुए उठा दिया। उस देवी ने आकर पेडो देवी की बात श्री प्रभुजी को बताई। श्री प्रभुजी ने कहा– तुम ही तो कह रही थीं कि मुझे उठा दिया करे, सो इससे तुम्हें उठा दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गन्ध तन्मात्र में लयता पा लेने का एक सामान्य महिला में अलौकिक शक्ति आने लगी और अन्तर्जगत के कार्यकलापों में दक्ष होने लगी।

क्रमशः

▣▣▣

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत।

(छान्दोग्य. 3/14/1)

यह सब ब्रह्म ही है। ब्रह्म से ही जगत उत्पन्न होता है, ब्रह्म में ही विलीन होता है और ब्रह्म में ही चेष्टा करता है। शान्त (संयत) होकर ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। पुरुष कर्ममय है। इस लोक में जैसा कुछ कर्म करता है, मरने के बाद परलोक में वह वैसा ही होता है। इसलिए सत्कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।

भगवद् भक्ति का प्रभाव

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

भगवद्भक्ति व्यक्ति के जीवन को परिवर्तन करने के लिए अमोघ शक्ति है। सूरदास ने लिखा– 'भक्ति करै कोई सूरमा जाति वरन कुल खोय' अर्थात् भक्ति कोई सूरमा ही कर सकता है। सूरमा से तात्पर्य ऐसे साधक से है जो कहीं भी, कभी भी दृश्य जगत में भेद दृष्टि रखता हो। काम कठिन किन्तु सद्गुरु की कृपा और साधन का दृढ़ संकल्प हो तो सब आसान, नहीं तो कठिन है।

प्रसंग जैमिनी कृत भक्त गाथा का प्रसंग है। जिसमें परम भागवत सुधन्वा की कथा है। कथा पौराणिक तथा योग परक है। सिद्धगुफा से संबंधित साधकों पर तो सद्गुरु देव भगवान एवं दादा गुरु परम योगेश्वर कृष्णास्य स्वरूप महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का अपने साधक शिष्यों पर योग की अमोघ कृपा सदैव बनी रहती है। सिद्धयोग पत्रिका के माध्यम से साधक पढ़ रहे हैं तथा आगे पढ़ते रहेंगे। भक्ति भी योग का अंग है। योग के बारे विदित है – 'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिद् ज्ञातम् भवति सा योग विद्या' अर्थात् जिसको जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है। वह योग विद्या है। भक्ति इसी योग में अन्तर्हित रूप में है। योग परक कथाओं तथा भक्तों की कथाएँ सद्गुरुदेव भगवन के मुख से सुनने को मिली है। पूज्य श्री गोपालनन्द जी का हाथ थोड़ा सा कटा। उन्होंने दादा गुरुदेव से कारण पूछा' दादा गुरु (योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी) ने कहा– स्वयं ध्यानस्थ हो देख लो। यह प्रभु में पूर्ण आस्था और परिपक्व भक्ति का प्रभाव जो उन्होंने जान लिया। साधकों को आगे की विस्तृत कथा ज्ञात है। ऐसी ही कथा परम भगवद्भक्त सुधन्वा का है। जिसे खौलते तेल के कड़ाहे में डालने का आदेश उनके पिता एवं राज्य के राजा महाराज हंसध्वज ने दे दिया। भक्त प्रहलाद् को विभिन्न यातनायें दी गयीं। अंततः बहन होलिका के साथ जलाने का प्रयास किया गया। लेकिन प्रयास निष्फल हुआ। इसका मूल कारण भगवत् भक्ति गुरु प्रदत्त मंत्र का जाप, गुरुदेव के उपदेशों का पालन। यद्यपि कलि का प्रभाव है लेकिन ऐसा नहीं कि सभी व्यक्ति उस धारा से प्रभावित हों। संख्यानुपात से ऐसी संख्या कम हो सकती है। सत्य का अन्त नहीं होता है। महाराज हंसध्वज ने जब सुना कि युधिष्ठिर का यज्ञअश्व हमारे राज्य में आ गया है तो उसने राज्य में घोषणा कर दिया कि इस युद्ध में जो उपस्थित नहीं होगा, उसे खौलते हुए तेल के कड़ाहे में डाल दिया जायेगा। राजा की आज्ञा सुनकर सभी पुत्र एवं योद्धा युद्ध के लिए चल दिये। राजा हंसध्वज के पाँच पुत्रों में सुधन्वा भी था। वह बड़ा बलवान और ईश्वर भक्त, ईश्वरके' प्रति पूर्ण समर्पित वृत्ति थी। भगवान ने गीता में कहा है–

सर्वधर्मानपरित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः।।

युद्ध के लिए सुधन्वा जैसे ही चला उसकी माता आरती की थाल लेकर पुत्र के जीत की मंगल कामना से बोली – घोड़े के साथ हरि को लाना। आगे ज्यों बढ़ा बहन भी भाई के लिए आरती की थाल लेकर युद्ध में जीत की मंगल कामना से आरती उतारी। पुनः आगे बढ़ने पर उसकी पत्नी भी आरती की थाल लेकर पति के पास आकर बोली– प्राणनाथ आप मुझ अंगहीन (कामदेव) से व्याप्त हुई अनुरक्ता पत्नी पर विजय प्राप्त करें। तब ही युद्ध में विजय प्राप्त कर सकते हैं। पता नहीं उस युद्ध में क्या हो? उस मुठभेड़ में आप की गति किस प्रकार हो। यद्यपि सुधन्वा ने पत्नी को समझाने का प्रयास किया। लेकिन वह किसी प्रकार तैयार नहीं हुई। क्योंकि श्राद्ध कर्म करने वाला कोई सन्तान नहीं था। सुधन्वा ने उसे गृहस्थ धर्म को बताते हुए कहा–देवी धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। तुमने श्राद्ध संबंधित जो प्रश्न किया है उसके अनुसार ऋषियों द्वारा निर्णित वचन मौजूद है। प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि पुत्र को श्रद्धा भक्ति पूर्वक पिता का वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए। आधी रात को अन्न सूंघकर एकादशी व्रत को पूर्ण करना चाहिए। तत्पश्चात् घर में अपनी पत्नी को आधी रात में ऋतुदान करना चाहिए। हे सुन्दरी गृहस्थों का यही परम धर्म माना गया है। किंतु पत्नी बोली– नाथ आप के पिता तथा भाई युद्ध स्थल पर गये हुए हैं। आज एकादशी व्रत भी नहीं है। अतः आप मुझ ऋतुप्रदाता को जल देने वाला अपना अंश प्रदान कर युद्ध को जायें। ऐसा कहकर पत्नी जंगली लताओं की तरह अपने पति से लिपट गयी। सुधन्वा ऐसे में रणभूमि में जाने में असमर्थ हो गया। उसने अपने किरीट कवच को उतार कर पृथ्वी पर रख दिया। रत्नों से सुशोभित शईया पर दिन में ही ऋतुदान दिया। पुनः स्नान आदि करके युद्धस्थल की ओर चल दिया। उधर पिता हंसध्वज ने क्रोध से आग बबूला होकर, कुछ सैनिकों को सुधन्वा को घसीट कर लाने को कहा। सुधन्वा तो युद्ध में जाने को तैयार ही था। फिर भी राजा की आज्ञा पाकर सैनिकों ने सुधन्वा को राजा की आज्ञा सुनाकर बोले–आप को खौलते हुए तेल में डुबाने की आज्ञा दे रखा है। सुधन्वा राजा की आज्ञा से जरा भी विचलित नहीं हुआ। क्योंकि वह ईश्वर का परम भक्त था। उसे अपने ईष्ट पर पूर्ण विश्वास था। हंसध्वज कर्त्तव्य पालन में विलम्ब और च्युत मानते हुए अपने राजपुरोहित लिखित मुनि और शंख मुनि के पास जाकर दण्ड का विधान जानने के लिए स्वयं गया। मुनियों ने कहा– राजन् जो राजा की आज्ञा का पालन नहीं करता वह राजधर्म का उल्लंघन करने वाला आत्मघाती होता है। उसे अवश्य ही दण्ड मिलना चाहिए। इस संबंध में राजाओं के वचन को सत्य की रक्षा हेतु राजा हरिशचन्द एवं महराज दशरथ का उदाहरण दिया। हंस ध्वज मुनियों की आज्ञा को शिरोधार्यकर सुधन्वा को खौलते हुए तेल में डालने की आज्ञा दे डाला। लेकिन– जाको राखे साइंया मार सके ना कोय, बाल न बाका करि सकै जो जग बैरीहोय, की कहावत चरितार्थ होने वाली थी। सुधन्वा अपने धर्म पालन में कहीं भी च्युत नहीं दिखा। खौलते हुए तेल में सुधन्वा को राजा की आज्ञा से डाल दिया गया। लेकिन आश्चर्य सुधन्वा तेल में डाले

जाने से पूर्व अपने इष्ट योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की याद बराबर करता रहा। खौलता तेल उसकी भगवद्भक्ति के प्रभाव से स्वाभाविक रूप से शीतल हो गया। लोगों को शंका हुआ कि तेल शायद शीतल हो गया हो। जबकि तेल खूब खौलाया गया था। उसकी शीतलता को लेने हेतु उसमें दो नारियल डाला गया। खौलते तेल में ज्यों ही नारियल डाला गया। नारियल जोर से आवाज करते हुए दो टुकड़े मे दोनों फूट गया। जिसमें एक टुकड़ा मुनि शेख दूसरा मुनि लिखित के ललाट में जोर से लगा। अन्य टुकड़े भी उसी तरह दूसरों के ललाट में लगा। मुनि द्वय तमतमा उठे। तेल की धारायें कड़ाह में उछलती रही। लिखित और शंख मुनी ने सुधन्वा के न जलने का अनेक कारण दिया। उन्होंने राजा से कहा– कहीं यह अग्निशमन औषधि का भक्षण तो नहीं किया। अथवा कोई तंत्र और मंत्र का प्रयोग तो नहीं किया। लेकिन उनको नहीं पता था कि सुधन्वा परम पितृभक्त, गुरु भक्त और ईश्वर भक्त था। कड़ाह में डालते समय उसने अपने इष्ट की हृदय से अर्चना कि – हे प्रभो यदि मै कर्तव्य मार्ग से कदाचित च्युत रहा हूँ तो अवश्य राज्यदण्ड का भागी हूँ। अन्यथा ध्रुव, प्रहलाद, द्रोपदी तथा गजराज की तरह आप ने जिस तरह रक्षा की है उसी प्रकार आज मेरी भी आप रक्षा करेंगे! सबके सामने राजा हंसध्वज के साथ ही मुनि लिखित और शंख भी लज्जित हो गये। वे सभी सुधन्वा को गले से लगाया। स्वयं को धिक्कारने लगे कि उस विष्णु भक्त बालक को कठोर दण्ड देने के बाद भी उसका बाल बाका नहीं किया जा सका। अब मैं स्वयं ही इस तप्त तेल के कड़ाहे में कूदकर स्वयं मरणान्त प्रायश्चित करूंगा। सबों ने कहा– पुत्र तुमको इस तप्त तेल में डलवाकर पाप का भागी बना। इस संसार में अज्ञानियों को सदैव संताप, अभाव और दुःख की प्राप्ति होती है। किंतु जो उन परम योगेश्वर श्री कृष्ण के चिन्तन में अपने मन को लगाते हैं। वे तीनों पापों से मुक्त हो जाते हैं। आज वर्तमान मे ऐसी अद्भुत घटनाएँ सुनने और देखने को मिलती हैं। जम्बू में अभी हाल ही में भयंकर भूस्खलन हुए कितने लोग काल कवलित हुए। लेकिन कुछ उस मलवे में कई दिन तक जीवित निकाले गये। निश्चय ही वे पुण्य पुरुष और बच्चे थे। पूर्व जन्म के पुण्य के प्रभाव से दबे मलवे में भी जीवित बचे रहे। तात्पर्य यह है कि आज भी जो ईश्वर पथ के अनुगामी हैं। ईश्वर उनकी हर पल सहायता करता है। इसीलिए भगवान ने गीता में कहा –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यमि मा शुचः।।
यत्र योगेश्वरः कृष्ण तत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोभूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्भिम।।

अर्थात् सभी धर्मों को छोड़कर मात्र मेरे शरण रूपी धर्म को स्वीकारो मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर मोक्ष प्रदान कर दूंगा। क्योंकि जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण और धनुर्धारी अर्जुन है विजय श्री वहीं निश्चय है। यही मेरा मत है।

▣▣▣

हार नहीं होती

मोहन स्वरूप योगी, गोवर्धन

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना गिरकर चढ़ना अखरता है।
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।

डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है,
जा जाकर खाली हाथ लौट आता है।
मिलते न सहज ही मोती गहरे पानी में,
बढ़ता दूना उत्साह इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।।

असफलता एक चुनौती है– स्वीकार करो,
क्या कमी रह गई देखो और सुधार करो।
जब तक न सफल हो नींद चैन की त्यागो तुम,
संघर्षों का मैदान छोड़ मत भागो तुम।
कुछ किए बिना ही जयजयकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव पर कृपाकोर

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

श्री गुरुदेव भगवान एवं हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज के कृपा पात्र एक व्यक्ति का नाम, श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव है। ये रहने वाले मिरजापुर (यू.पी.) जनपद के चुनार तहसील के हैं। मिरजापुर शहर में भी इनका अपना निवास–स्थान है। ये मिरजापुर जनपद में ही राजस्व विभाग में कार्यरत हैं। सरकारी नौकरी ज्वाईन करने के साथ ही इनकी संगति मदिरा पीने वालों से हो गयी। आज के इस घोर कलिकाल में प्राणीमात्र इतना लालची एवं दूसरे की वस्तु हड़पने के स्वभाव वाला बन गया है कि वह अपनी कार्य सिद्धि के लिए किसी भी कुकर्म को (शराब पीना–पिलाना, माँस खाना –खिलाना एवं अन्य अत्याचार एवं अनाचार के कार्य) कर सकता है एवं इसकी सफलता में ही वह सुख का अनुभव करता है। राजस्व विभाग में कार्यरत होने के नाते श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव जी को ये सभी वस्तुयें सहज ही बिना कुछ खर्च किये प्राप्त हुआ करती थी एवं ये उसका उपभोग भी खूब करते थे। ये दिन–रात कभी भी शराब पीने के आदी बन गये। इनका स्वभाव यह बन गया कि रिश्वत में बिना शराब लिये ये किसी का कोई भी कार्य नहीं करते थे।

इनकी जिन्दगी का दूसरा पहलू इसके बिल्कुल विपरीत था। कहने का तात्पर्य यह कि इनकी धर्मपत्नि महान धार्मिक प्रवृत्ति की थी। नित्य नियम से गंगा स्नान करना एवं गंगाजी के किनारे बने मन्दिर में भगवान शिव तथा उसी मंदिर में विराजमान श्री चित्रगुप्त जी की पूजा करना उसका नित्य का कार्य था। इस महिला ने इलाहाबाद माघ मेला में लगने वाले योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई के कैम्प में कई बार आध्यात्मिक सत्संग का लाभ भी लिया था तथा उसी कैम्प के शिविर में निवास भी करती थी। इस प्रशिक्षण केन्द्र की कई आध्यात्मिक किताबें खरीद कर यह अपने घर भी ले गयी थी एवं उसका अध्ययन एवं मनन भी किया था। उसने परम योगिनी रामरती के चरित्र को भी कई बार खूब अच्छी प्रकार से पढ़ा था एवं अपने पतिदेव को भी कई बार यह चरित्र, उनमें बदलाव लाने के लिए भी सुनायी थी। इस पवित्र चरित्र को सुनने पर, उसको अपनी खराब आदत का आभास होता था, परंतु अपनी धर्मपत्नी से कहता था कि मैं क्या करूं, मैं इसे छोड़ना चाहता हूँ परंतु छोड़ नहीं पाता। उसकी अर्धांगिनी कई बार उसे श्री प्रभु जी के माघ मेला दरबार में लाने का प्रयत्न करती, परंतु हरेक बार वह असफल ही रहती थी। उसका पति प्रत्येक बार आने का प्रयास भी करता था परंतु ऐन वक्त पर कोई न कोई अन्तराय उपस्थित हो जाता था, जिसके फलस्वरूप वह इस पुण्य कार्य से वंचित रह जाता था। इसके साथ एक बात और थी

कि पत्नि के अपने मायके या किसी और रिश्तेदारी में जाने के बाद ये और दिनों की अपेक्षा कुछ ज्यादे ही शराब का सेवन किया करता था। यदि उसी समय अचानक उसकी पत्नी आ गयी तो उसे बहुत उलाहना देती थी एवं कहती थी कि ऐसा लगता है कि तुम्हारी यह आदत शरीर के साथ ही जायेगी। इसी समय वह योगिनी रामरती का भी उदाहरण देती थी एवं कहती थी कि तुम उनकी चरण शरण में चलो, तुम्हारी यह आदत अवश्य ही छूट जायेगी। परंतु उसकी बातों का श्री कुंवर लाल जी पर क्षणिक प्रभाव पड़ता था एवं वह फिर कुछ समय पश्चात् वही कार्य करना आरम्भ कर देता था।

दो फरवरी सन् उन्नीस सौ चार की घटना है उसकी धर्म परायणा पत्नि दस दिन के लिए अपने मायके गयी हुई थी। वह तेइस जनवरी सन् दो हजार चार को ही मायके गयी थी एवं उसे चार फरवरी के बाद आना था। इस बीच श्री कुँवर लाल जी, बिना लगाम के घोड़े की तरह पूर्ण स्वतंत्र मानकर खूब मदिरा पान कर रहे थे। दो फरवरी को इन्होंने इतना मदिरा पान किया कि वे अपनी सुध–बुध खो बैठे। मदिरा की दुकान से इनको पकड़कर, इनके शुभेक्षुओं ने इनके घर पहुँचाया। किसी दूसरे ही व्यक्ति ने इनके पैंट की जेब से चाभी निकाला एवं इनके घर का मुख्य दरवाजा खोलकर इन्हें अन्दर किया एवं वह फिर अपने गन्तव्य स्थान को चला गया। घर के अन्दर प्रवेश करने के बाद श्री कुँवर लाल जी ने अपना जूता भी नहीं निकाला एवं उसी वेश में बिस्तर पर लेट गये। अप्रत्याशित रूप से इनके घर आने के करीब दो घन्टे के बाद इनकी धर्मपत्नि ने घर के अन्दर प्रवेश किया। घर की हालत देखकर वह अवाक् रह गयी। घर का मुख्य दरवाजा खुला ही था एवं श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव बेसुध बिस्तर पर लेटे हुए थे एवं अपनी धर्मपत्नी के घर में आने का आभास उन्हें नहीं हुआ। उनकी धर्मपत्नी ने कहा कि आज भी आपने खूब शराब पी है। उन्होंने अपनी पत्नी की बात को स्वीकार करते हुए कहा कि आज हमने कुछ ज्यादा ही शराब पी लिया है। उनकी पत्नी ने धिक्कारते हुए कहा कि धिक्कार है तुम्हारी इस आदत को, कि मेरे द्वारा लाख धिक्कारने के बाद भी तुम अपनी ये आदत नहीं छोड़ रहे हो। उसने कहा कि अब तो मुझे भी ऐसा लगता है कि मेरी यह आदत नहीं छूटेगी। उनकी धर्मपत्नी ने खाना बनाया, एवं उनसे खाने का अनुरोध किया, परंतु उन्होंने कहा कि खाना रख दो, अभी थोड़ी देर में खाना खा लूंगा। उसने खाना रख दिया एवं स्वयं खाना खाकर सो गयी। उसे नींद आ गयी। श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव जी ने खाना नहीं खाया एवं बार–बार अपनी करनी पर पश्चाताप करते रहे। इसी समय उन्हें योगिनी रामरती की याद आयी एवं तत्काल अहैतुकी कृपा सागर, अकारण दयालु श्री रामलाल जी की याद आ गयी। उन्होंने नशे की हालत में ही उस दयासागर से प्रार्थना किया, कि प्रभो! यदि आपने कृपा नहीं की तो मैं शराब पीते–पीते मर जाऊंगा। अब इसे छोड़ने की शक्ति मेरे पास नहीं है। आपने रामरती जैसी शराबी लड़की का शराब छुड़वा कर, उसे परम योगिनी बना दिया। आपके लिए कोई कार्य अब मेरी समझ से ऐसा नहीं है,

जिसे आप चाह दे एवं वह न हो। अतः हे दयासागर! मेरी भी आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे किसी प्रकार इस भयंकर दुष्कर्म से छुटकारा दिलाइये। आप अनादि योगेश्वर एवं पूर्ण परमेश्वर हैं, अतः आप से मैं बार–बार हाथ जोड़कर यही प्रार्थना कर रहा हूँ कि मेरा जीवन बचाने की कृपा की जाय। श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव करीब डेढ़ घन्टे से ज्यादा समय तक आर्तभाव से श्री चरण कमलों में प्रार्थना करते रहे, एवं उसी समय उन्हें नींद आ गयी। नींद आते ही उन्होंने जो दृश्य देखा, उसका उनके शब्दों में वर्णन निम्नवत है।

उन्होंने देखा कि उनके कमरे में लगोटी पहने, हाथ में चिमटा लिये काफी लम्बे–चौड़े एक महात्मा प्रवेश किये, उनके पीछे धोती कुर्त्ता पहने एवं हाथ में छड़ी लिये एक और महात्मा प्रवेश किये एवं उनके पीछे सफेद वस्त्रधारी एक महिला को प्रवेश करते उन्होंने देखा। दोनों महात्माओं के शरीर से इतना तेज निकल रहा था कि उन पर दृष्टि नही ठहर रही थी, महिला का शरीर भी पूर्णतया प्रकाशयुक्त था परंतु उपस्थित दोनों महात्माओं की तुलना में नगण्य था। चिमटाधारी महात्मा जी ने छड़ी धारण करने वाले महात्मा से कहा कि बेटा! इसका शराब छुड़वाना है। उस महात्मा ने, "श्री प्रभु जी! कहकर, कहा कि बोले शराब पीना छोड़ोगे या नहीं? यह कहते हुए उन्होंने अपनी छड़ी श्री कुँवर लाल श्रीवास्तव को मारने की मुद्रा में तानी थी"।

बेचारा कुँवर लाल शराब छोड़ना तो चाहता था परंतु यह अब उसके प्रयास से सम्भव नहीं था। अतः गिड़गिड़ाते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, 'महाराज जी! आँखों में आँसू भरे हुए उसने कहा कि मैं अपनी इस आदत से बहुत परेशान एवं दुःखी हूँ परंतु क्या करूँ, मेरा अब इस पर बस नहीं है, आप ही कृपा करके इससे हमको मुक्त कराने की कृपा करें।' यह प्रार्थना करते समय उसकी आँखों से अनवरत अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने अपनी छड़ी नीचे कर ली। आखिर ठहरे तो दयासागर एवं अपनी मधुर मुस्कान के साथ, अपने मुखारविन्द से कहा, "आज से तुम शराब पीने की कोशिश मत करना। यदि तुमने कोशिश भी की तो शराब नहीं पी सकोगे।" इतना कहकर वे महात्मा शान्त हो गये। तदन्तर उनके साथ आयी महिला ने कहा कि तुम्हारी धर्मपत्नि कहाँ है। श्री कुँवर लाल जी के इशारा करने पर वह उनकी महिला के सोने वाले स्थान पर गयी एवं उसे आशीर्वाद दिया। उसके बाद उस महिला ने कहा कि प्रभु जी! इसका कार्य हो गया अब आप अपने धाम चलने की कृपा करें। उसके इस प्रकार निवेदन के बाद तीनों शक्तियाँ तत्काल अन्तर्ध्यान हो गयीं।

वह तत्काल अपने बिस्तर से उठा और अपनी पत्नी को, जो बगल में ही सोई थी, जगाकर पूरी कृपा का वर्णन किया एवं उसके बाद पति–पत्नी पूरी रात जगकर इन शक्तियों की विशेष कृपा का वर्णन कर आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल श्री कुँवर लाल जी अपने कार्यालय जा रहे थे, जो अनायास ही उनके पैर शराब की दूकान पर रुक गये। वे कुछ कहते इसके पहले ही उनको उल्टी आना आरम्भ हो गया।

जो कुछ भी वो घर से खाना खाकर चले थे, सबका वमन हो गया एवं उस शराब की दुकान से कुछ दूर जाने के बाद ही उन्हें कुछ आराम मिला। इस प्रकार अनाथनाथ की करुणा कृपा से श्री कुँवर लाल जी की शराब पीने की खराब आदत पूर्ण रूप से छूट गयी। इस वर्ष अर्थात् वर्ष दो हजार नौ में श्री कुँवर लाल जी अपनी धर्मपरायणा पत्नि के साथ लगभग ग्यारह दिन तक अपने शिविर में रहकर आध्यात्मिक आनन्द का लाभ लिये। उसके बाद से इस परिवार पर सदैव छोटी–बड़ी कृपायें होती रहती हैं।

इस प्रसंग को लिखते समय अपने एक आदरणीय गुरुभाई की श्रद्धाभाव से लिपिबद्ध की गयी ये पंक्तियाँ अनायास ही याद आने लगती हैं:–

सब पर करुणा करते, केवल शिष्यों पर ही नहीं।
देखना किसी को है तो देख ले सही।।

▣▣▣

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचना भेज रहे हैं कि हमारे वरिष्ठ गुरुभाई कटरा जम्मू निवासी श्री हरि भक्त चैतन्य जी महाराज का 9 अक्टूबर को बैकुण्ठ वास हो गया है। वे गुरुदेव के लाड़ले व पुराने बच्चे थे। इन्होंने श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के साथ मिलकर योग विद्या का बहुत प्रचार किया था। इन गुरु भक्त योगी के देहावसान पर श्री सिद्धगुफा वासी एवं सभी गुरुभाई शोक संवेदना व्यक्त कर रहे हैं। परिवार के दुःखी सदस्यों को श्री प्रभु जी इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दें। श्री प्रभुजी इन्हें अपना अभय चरण कमलों में स्थान दें।

–सम्पादक सिद्धयोग

चँचल मन से योग सिद्धि कैसे करें?

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब, हिमाचल प्रदेश

जेहि मन वश सोइ योग निधाना। बिनु अभ्यास न मन ठहराना।
जो करि जतन उपाय उपावे। सिद्धि सहज साधन कर पावे।।

गीता 6/36

अखिलेश्वर श्रीकृष्णजी महाराज ने गीता में अर्जुन से कहा है–जिनका मन वश में नहीं है, उनके लिए योग की प्राप्ति करना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा मत है। परंतु प्राणी मन को वश में करके योग प्राप्त कर सकते हैं। भगवान के इन शब्दों से ज्ञात होता है कि मन को वश में किये बिना योग की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि –

मन बहु चंचल प्रथम स्वभावा। द्रुत गतिवंत सक्ति अति पावा।
हुइहै झंझावात समाना। तेहि निग्रह दुष्कर मैं जाना।

गीता 6/34

मन स्वभाव से ही चंचल है, हठीला है, दृढ़ तथा बलवान है। इसे रोकना वायु के रोकने के समान कठिन है। अर्जुन के इस तर्क के उत्तर में भगवान ने फिर कहा है, कि प्राणीमात्र को अपने दुःखों की निवृत्ति तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए इस चंचल मन को प्रयत्न द्वारा वश में करना ही होगा क्योंकि मन की चंचलता पर विजय प्राप्त करते ही परमात्मा की प्राप्ति बड़ी सहज हो जायेगी। भगवान शंकराचार्य ने कहा है 'जितं जगत् केन मनो हि येन'। अर्थात् जिसने मन को जीत लिया उसने संसार पर विजय प्राप्त कर ली। साधारणतः मनुष्य कहा भी करते हैं – मन जीता, जग जीता अर्थात् ईश्वर प्राप्ति के लिये हमें अपने मन पर काबू करना ही पड़ेगा तभी हम ईश्वर की सानिध्यता का लाभ ले सकेंगे।

आगे भगवान श्री योगेश्वर कृष्ण जी महाराज ने अर्जुन से पुनः कहा–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

गीता, 6/35

निःसन्देह मन को वश में करना अति दुर्लभ है, परंतु अभ्यास और वैराग्य से मन की चंचलता वश में की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि मन को वश में करना दुष्कर अवश्य है परंतु असंभव नहीं है। क्योंकि चंचल मन से प्राणी कदापि सफलता, जीवन में प्राप्त नहीं कर सकता। मन को चितचोर कहा गया है। जैसे चोर, चोरी करना छोड़ भी दे, तो भी छोटी मोटी

हेरा फेरी, धोखेबाजी करने से बाज नहीं आता, उसी प्रकार मन, अवसर देखा करता है, कि कब उसे समय मिले कि प्राणी के चित्त को इधर-उधर घुमा दे। मन बिना पंख का स्वतंत्र पक्षी है जो अगाध गति से उड़ता रहता है, क्षण-क्षण में स्वभाव बदलता है, चंचल है, स्थिर नहीं है, ऊँची-ऊँची कल्पनायें बनाता तथा बिगाड़ता रहता है। प्राणी को मन पर विश्वास, कदापि नहीं करना चाहिए। यथा-नित्य ददाति कामस्यॉच्छद्र तमनु येऽस्य:। योगिन: कृतमैत्यस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली।।

जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने पर विश्वास रखने वाले पति को धोखा देती है, वैसे ही मन भी अपने पर विश्वास रखने वाले योगी को – अपने अन्दर काम तथा क्रोध आदि को समय आने पर धोखा दिया करता है। सच ही कहा है-

मन चंचल मन बावरा, मन असंयत चित्त चोर।

एक जगह ठहरे नहीं, भागे चहुं दिसि ओर।।

अर्थात् मन बड़ा चंचल है, पागलों जैसा व्यवहार करता है, जो प्राणी के वश में नहीं है। चोर की भांति चारों तरफ हर पल दौड़ने का अवसर देखता रहता है। कब उसे इधर-उधर घूमने का समय मिले तब अपने चित्त को भागने का सुअवसर दे दे। तभी तो कहा गया है, 'खाली दिमाग शैतान का घर।' अत: पलभर के लिए मन को खाली न छोड़ें। इसे प्रयत्नों द्वारा अपने कार्यों में व्यस्त बनाये रखें। मन चित्तों का अथाह भंडार है। एक दिन में सवा लाख चित्तों का निर्माण, मन के द्वारा होता रहता है। मन की गति, हवा, पानी, सूर्य की रोशनी तथा आवाज से कई सौ गुनी है। इसकी गति का कोई पैमाना नहीं है। अत: मन को वश में करने के लिए सर्व प्रथम मन के स्वरूप पर विचार करना श्रेयस्कर है।

मन का स्वरूप

वास्तव में मन कोई भौतिक पदार्थ नहीं है जिसे पकड़ा जा सके। मन हमारे मस्तिष्क की एक भावना है, जो केवल अनुभव की जा सकती है तथा कभी-कभी हम उसे व्यक्त भी कर पाते हैं। अत: मन आत्म तथा अनात्म के मध्य में रहने वाली एक विलक्षण शक्ति है। वह स्वयं अनात्म तथा जड़ है किंतु बन्ध और मोक्ष इसी के अधीन है-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।।

अर्थात् मन ही जगत है, मन नहीं तो जगत भी नहीं। मन विकारी होता है, इसका कार्य संकल्प-विकल्प करना ही है। एक बार जिस पदार्थ को ग्रहण कर लेता है, स्वयं भी उसी का होकर रह जाता है। मन का राग के साथ गहरा सम्बन्ध बनाता है, अत: भांति-भांति के प्रपंचों की तरफ ले जाता है। सौंदर्यता से राग पैदा करता है। राग में मन आसक्त हो जाता है। इसीलिए मन विषयी बन जाता है। जैसे हमारी इन्द्रियां विषयों को ग्रहण कर लेती हैं, ठीक उसी प्रकार मन भी विषय ग्रहण करने लगता है। इसी कारण मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहते हैं।

मुख्य बात होती है कि मन, सुख तथा दु:ख का अनुभव कर सकता है। जब इसे विषयों से दु:ख का आभास होने लगता है, तो यह अपने आप को उन विषयों से अलग भी हो जाता है। भगवान अखिलात्मा कृष्ण जी महाराज ने गीता में कहा है कि नि:सन्देह मन चंचल, मस्त हाथी के समान है परंतु निरन्तर अभ्यास, वैराग्य तथा ज्ञान रूपी अंकुश से मन को वश में किया जा सकता है। यथा — अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध: अर्थात् अभ्यास तथा वैराग्यता से चित्तों का निरोध हो जाता है।

मन को वश में करने के कुछ योगीय साधन

1. भोगों में वैराग्यता अपनायें– इन्द्रिय विषयों से ध्यान हटा लेने को ही वैराग्य कहा गया है। हमारा मन सदैव सौन्दर्यता की तरफ बार–बार जाता है, विषयों के भोगने में सुख की अनुभूति होती है, अगर हम चैतन्यता से, ज्ञान से, उन विषयों के सुख में, दु:खों की अनुभूति दृढ़ मन तथा यथेष्ट प्रबल इच्छा शक्ति से करें तो मन उस तरफ नहीं जायेगा तथा यदि ज्ञान से उस तरफ गया भी तो वापस आ जायेगा। क्यों प्राणी के विषयों के भोगने की लालसा में नाना प्रकार के दु:ख छिपे हुए होते हैं। अत: जब मन विषयों के सुख में जाने की चेष्टा करें उसी क्षण ज्ञानवान होकर प्रभु नाम स्मरण अथवा गुरुमंत्र स्मरण करना चाहिए। दयालु गुरुदेव अथवा प्रभु मनुष्य को अधोगति वाले मार्ग से तुरन्त अपने बच्चे को सद्मार्ग पर ले आते हैं तथा इस प्रकार प्राणी दु:खों से बच जाता है। विषय मनुष्य को अंधा बना देते हैं, उसे अपनी इच्छा पूर्ति में ही सुख की अनुभूति प्रतीत होती है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। अपने परम पूज्य ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरुदेव अनन्तपूर्ण शिवातार श्री प्रभु रामलाल जी महाज ने ऐसी ही विषयोशक्त नारी 'रामरती' को पूर्ण वैराग्यता प्रदान करके उद्धार किया था, जो चौबीसों घंटे मस्त शराब के नशे में धुत रहा करती थी। आज उसी की समाधि पर लोग मनौतियाँ मांगते हैं तथा लोगों के मनोरथ सिद्ध हो रहे हैं। यह स्थान बिहार प्रदेश के सीतामणि जिले में पड़ता है। श्री भगवान ने कहा है–

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्म मृत्यु जरा व्याधिदु: खदोषानुदर्शनम्।।

गीता 13/8

अर्थात् इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव तथा अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दु:ख और दोषों का बार–बार विचार चाहिए। तभी वैराग्य की भावना से अपने मन को शान्त तथा वश में कर पायेंगे।

2. नियमपूर्वक जीवन जीना– मन को वश में करने का सफल साधन है, नित्य के सभी कार्य नियम पूर्वक किये जायें, ऐसा करने से मनुष्य को मन: शान्ति लाभ होता है। अत: प्रात: काल सोने से जागकर रात को सोने तक के सभी कार्यों की एक समय सारिणी बना

लेनी चाहिए, कि अमुक कार्य, कब कैसे करना है? ऐसा करने से मन स्वाभाविक रूप से प्रसन्नचित बना रहता है। आपने देखा होगा ऐसे नियमित कार्य पद्धति अपनाते समय अगर कोई रुकावट आ जाये अथवा आपसे मिलने मित्र या सम्बन्धी उस समय आ धमके, तो आप का मन बैचेन, उदास हो जाया करता है। क्योंकि उक्त कार्य की पूर्णता से पूर्व ही रुकावट उपस्थित हो गई तथा हम मन ही मन सोचते हैं कि कहाँ से यह मित्र अथवा सम्बन्धी आ गया और कार्य रुक गया इत्यादि। अतः मनुष्य को सभी कार्य नित्य तथा नियमित रूप से करने चाहिए। इसी प्रकार आसन, प्राणायाम, गृहस्थ जीवन के कार्य, भजन, पूजा, आहार, विहार, शयन इत्यादि के कार्य नियमपूर्वक समय पर ही करने चाहिए ऐसा करने से मन स्वतः ही संयमित रहता है। ऐसा न कर पाने से मनुष्य का मन, अशान्त, बैचेन, चिड़चिड़ा तथा क्रोधी हो जाता है।

3. मन की क्रियाओं पर ध्यान रखें– साधारणतः मनुष्य नित्य प्रति तीन प्रकार के कर्म किया करता है। यह कर्म, सात्विक, राजस तथा तामसिक हैं। सात्विक कर्मों का फल सदैव सुखदायी, राजस कर्मों का समान तथा तामसिक कर्मों का फल सदैव दुःखस्वरूप होते हैं। गृहस्थ के साारणतः समान कर्म अर्थात् सुख तथा दुःख दोनों का समिश्रण होते हैं। अतः प्राणी को अपने मन की प्रत्येक क्रिया पर ध्यान देना चाहिए। रात को सोने से पूर्व लगभग दस मिनट तक पूरे कार्य दिवस पर विचार करें कि आज मैंने कौन सा कार्य, अच्छा, बुरा तथा मिश्रित परिणाम वाला किया है। अगर किया है तो इसमें सुधार लाया जा सकता था कि नहीं। हमारे मन के दो पहलू होते हैं। प्रथम बाह्य मन, जिसे हम मानते हैं तथा उसी के अनुसार कार्य भी करते हैं। बाहरी मन वास्तव में पापी होता है, यही मनुष्य को पाप कर्म के लिए प्रेरणा देता है, उकसाता है, जबकि दूसरा मन, अन्तः मन अथवा भीतरी मन होता है जो सदैव सच्चा हितैषी देव स्वरूप होता है। भीतरीमन प्राणी को बार–बार पाप कर्म से बचने की प्रेरणा देता है। अन्तःकरण में सच्चाई भरता है, यह प्राणी को देव कर्म की तरफ प्रेरित करता है, फिर भी हम बाह्यमन के अधीन होकर क्रोधवश, अहंकार वश, अपना मन पसंद कार्य कर बैठते हैं तथा दुःख के भागी बन जाते हैं। अतः दिन में किये गये कर्मों की डायरी पर अवश्य ध्यान देना चाहिए तथा जब लगे कि अमुक कर्म से आसानी से बचा जा सकता था, उस पर आगे न करने का संकल्प लेना चाहिए। ऐसा करने से मन स्वतः ही शान्तचित्त बन जाया करता है।

4. मन के कहने पर विश्वास न करें–

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और।।

अर्थात् मन के कहने पर नहीं चलना चाहिए। मन पर विश्वास न करें। मन बार–बार

अपना रूप बदलता रहता है। जब तक मन पर काबू नहीं होता, तब तक मन हमारा शत्रु ही है। मन से हारना नहीं चाहिए, परंतु मन को प्रयत्नपूर्वक वश में करने का प्रयास करते रहना ही श्रेयस्कर है। मन से लड़ने में साहस रखना आवश्यक है। मन कभी डराता है, धमकाता, कभी फुसलाता है, कभी अनेकों तरह के प्रलोभन दिखाता है, लालच देता है, तरह–तरह के गिरगिट की तरह रंग, रूप बदलता है, फिर भी प्राणी को मन के धोखे में नहीं आना चाहिए तथा मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। कभी मन मित्रवत व्यहार करता है, तो कभी शत्रुवत बन जाता है। तभी कहा गया है–

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन ही मेरा शत्रु, मन ही मेरा मीत।।

मन का साथ दृढ़ता से सामना करे तो धीरे–धीरे मन अपने हथियार डालने लग जाता है, अतः आवश्यकता धैर्यता से मन का सामना करने की है। अतः इस प्रकार व्यवहार करने से मन आपके कहने में आ जाता है। जैसे घुड़सवार लगाम से घोड़े को दौड़ाता है, उसी तरह ज्ञान रुपी लगाम से मन पर काबू किया जा सकता है।

5. मन को सत्कार्यों में लगाये रखें– कहते हैं 'खाली मन, शैतान का घर' होता है मन जब स्वतंत्र रहता है तो चारों तरफ घूमता रहता है, अतः मन को निरंतर कार्यों में संलग्न रखें तो मन को इधर–उधर घूमने को अवसर ही कहाँ मिलेगा। मन कभी भी निकम्मा नहीं बैठ सकता। कुछ न कुछ उधेड़ बुन करता ही रहता है। अतः जब तक आप सोयें नहीं, तब तक अपने को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखें। कुछ कार्य शेष न हो तो, धार्मिक पुस्तकें पढ़ते रहें, अपनी पसंद के कार्य करें, मानसिक जाप करते रहें तो विशेष अच्छा है। अपने को आध्यात्मिकता से जोड़ते रहने से ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है तथा अपना मन भी वश में रहता है।

6. मन को परमात्मा की तरफ प्रेरित करें– गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने स्पष्ट कहा है–

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत।।

गीता 6/26

यह चंचल मन तथा अस्थिर स्वभाव मन, जहाँ–जहाँ दौड़कर जाय, उसे वहाँ–वहाँ से हटाकर बार–बार इसे परमात्मा में ही लगाना चाहिए। निरंतरता के अभ्यास से मन स्वयं ही ईश्वर भक्ति की ओर मुड़ने लगता है। प्रारम्भ में तो अपना बल, पराक्रम, चंचलता दिखलाता है, कभी–कभी तो प्राणीमात्र को हताश भी कर देता है, परंतु धैर्यता के साथ अभ्यास करने से मन आपके सामने नतमस्तक होने को मजबूर हो जाता है। इसीलिए सत्य ही कहा गया है–

करत करत अभ्यास के, जड़मत होत सुजान।
रसरी आवत– जात से सिल पर पड़त निशान।।

भगवान ने पुन: कहा है–

शनैः शनैः रुपरमेद् बुद्धया घृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किन्चिदपि चिन्तयेत।।

गीता 6/25

अर्थात् धीरे–धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दें। परमात्मा में बार–बार ध्यान लगाने से साधक का ध्यान पक्का हो जायेगा तथा सब विषयवासनायें छोड़ कर ध्यान में ही सच्चे सुख की अनुभूति होने लगेगी।

7. शब्द–ओंकार ध्वनि सुनने का अभ्यास– आँखें बन्द करके दोनों कानों के द्वारों को अँगुलियों से बन्द करके अन्दर के शब्दों को सुनने का अभ्यास करना चाहिए। दोनों कानों में भँवरों के गुंजन की आवाज, प्रातःकालीन पक्षियों के चहकने सी आवाजें, सुनाई देने लगती है। कभी शंखनाद, घंटों की ध्वनि, मुरली ध्वनि, सितार की ध्वनि, मृदंग, भेरी तथा सिंह के गर्जने की आवाजें सुनाई देती है। इस तरह दस तरह के शब्द सुनने के पश्चात् 'ओउम' की मधुर–मधुर ध्वनि सुनाई देने लगती है, जिससे साधक की समाधि तक लग जाती है तथा मन निश्चल शांत व स्थिर होने लगता है।

8. योग ध्यान साधना – योग के आठ अंग कहे गये है, उनमें ध्यान की विशेष महत्ता है। ध्यान, ध्येय वस्तु का किया जाता है। ध्येय, प्रभु का स्वरुप, श्री सद्गुरु देव जी का स्वरुप अथवा अन्य कोई इष्ट जिस पर साधक की पूर्ण निष्ठा तथा विश्वास हो। ध्यान के लिए, फोटो, मूर्ति, चिन्ह कुछ भी हो सकता है। गुरु मूर्ति अथवा गुरु अड़ुष्टि का ध्यान सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ध्यान के साथ गुरु मंत्र अथवा इष्ट के नाम का निरंतर जाप भी परमावश्यक है। ध्यान को बार–बार अपने इष्ट में लगाने से ध्यान परिपक्व हो जाता है तथा मन का भटकाव भी एकदम रुक जाता है। दृढ़ प्रबल इच्छा शक्ति से किया गया ध्यान, मन की एकाग्रता को बढ़ाता है। ध्यान से प्राणी तनाव मुक्त हो जाता है तथा मानसिक परेशानियों से निर्मूल मुक्ति मिलती है, अतः ध्यान साधना से मन अवश्य–अवश्य वश में हो जाता है। ध्यान में निरंतरता की आवश्यकता है।

9. नाभि अथवा नासिकाग्र में दृष्टि साधना– किसी भी आसन में शान्तचित्त सीधे बैठकर अपनी दोनो आँखों की दृष्टि नासिका के आगे वाले भाग पर इस प्रकार केन्द्रित करें जैसे तालाब में खड़ा बगुला मछली पकड़ने के लिए एकटक देखता रहता है, ऐसा तब तक करते रहें जब तक पलक न मारने पड़े। इसी तरह नाभि में दृष्टि लगावें। आप अभ्यास

करते–करते अपने को सभी चिन्ताओं से मुक्त पायेंगे, जितने समय तक अभ्यास में तत्पर संलग्न बने रहेंगे, उस समय मन इधर–उधर नहीं दौड़ पायेगा तथा धीरे–धीरे मन स्थिर होने लगेगा।

10. **मित्रवत–करुणाभाव जागृत करें–** महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में कहा है "मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।"

सुखी मनुष्यों से प्रेम, दुखियों पर दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता तथा पापियों के प्रति उदासीनता का भाव प्रदर्शित करने से मन सदैव प्रसन्न बना रहता है। दूसरों पर प्रेम करने से मन से ईर्ष्यामल तथा डाह की भावनायें निकल जाती है तथा मन में प्रसन्नता पैदा होती है। दुखियों पर घृणा न करके दया, कृपा भाव रखने से मन शुद्ध, आनन्दित एवं प्रसन्न बन जाता है। परोपकार की भवना त्याग तथा दान करने से जागृत हुआ करती है। धार्मिक कार्यों में हाथ बँटाने से अपना तन, मन, धन लगाने से मन प्रफुल्लित तथा आनन्दित हो जाता है। मन के चित्त, विकार दूर होने लगते हैं। पापियों की उपेक्षा, उनके प्रति दया भावना से क्रोध शान्त हो जाता है। मन तामस, राजस वृत्तियाँ त्याग कर सात्विकता की तरफ अग्रसर होने लगता है।

11. **स्वाध्याय साधना** – अपने को समझना, अपनी क्रियाओं का अध्ययन, मनन करना ही स्वाध्याय है। दूसरा अर्थ है, अच्छे–अच्छे सद्ग्रन्थों को पढ़ना तथा उसकी गहराईयों को अपने अन्तःकरण में उतारना, अपनाना इत्यादि। अपने धर्म की पुस्तकों का अध्ययन, जैसे, रामायण, गीता, शिव पुराण, श्रीमद्भागवत्, पुराण, उपनिषद् इत्यादि का करना ही स्वाध्याय है। इनके पढ़ने, सुनाने से भी मन में भक्ति भावना पैदा होती है।

12. **त्राटक अथवा एक तत्व की साधना–** मन को शांत करने में त्राटक की बड़ी महत्ता है। किसी एक ध्येय वस्तु पर टकटकी लगाये निरन्तर बिना पलक झपके देखने को ही त्राटक कहते हैं। जब तक ध्येय वस्तु अदृश्य न हो जाय, तब तक क्रिया करते रहने से त्राटक सिद्धि होती है। बार–बार के अभ्यास से सफलता मिलती है। योग दर्शन में कहा गया है– तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यास। अर्थात् चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए शास्त्रनिर्दिष्ट अभिमत एक तत्व का अभ्यास करना चाहिए। एक तत्व, मूर्ति, बिन्दु, चिन्ह, वस्तु, दीपक की जलती लौ, औषधि, चन्द्रमा एवं नक्षत्र अथवा तारे हो सकते हैं। ऐसा करने से मन की एकाग्रता निरंतर बढ़ती रहती है तथा मन संयमित और वश में होने लगता है।

13. **प्राणायामसाधना–** यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि ये योग के आठ मुख्य अंग होते हैं। इन अंगों की दो भूमिकायें होती हैं– 1. बहिरंग 2. अन्तरंग। यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार बहिरंग कहे जाते हैं क्यों इनका सम्बन्ध शरीर की बाहरी क्रियाओं से होता है। शेष तीन, धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग कहे गये हैं, क्योंकि ये तीनों शरीर की अन्दर की क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। महर्षि पतंजलि

जी ने इन तीनों को 'संयम' भी कहा है– 'त्रयमेकत्र संयमः।' प्राणों को आयाम (आराम) देना ही प्राणायाम का ध्येय है। नाक द्वारा, हवा अन्दर जाती है, उसे 'पूरक', जितने समय अन्दर हवा रूकती या रोकते हैं, उसे 'कुम्भक' तथा अन्दर (पेट) की हवा जो बाहर निकलती है, उसे 'रेचन' कहा जाता है। अर्थात् प्राणायाम् में तीन क्रियायें एक साथ होती हैं। गीता में श्री कृष्ण महाराज ने कहा है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रूद्धया प्राणायाम्परायणाः।।

4/29

अर्थात् कई अपान वायु में प्राण वायु का हवन करते हैं, कई प्राणवायु में अपानवायु का हवन करते हैं, और कई प्राण और अपान की गति को रोक कर प्राणायाम क्रिया करते हैं अतः प्राणायाम से इन्द्रियों के मल बाहर निकल कर मन शुद्ध सोना बन जाता है।

14. श्वास के साथ नाम–जप अथवा अजपाजप साधना – मनुष्य अपनी प्रत्येक श्वांस तथा प्रश्वांस की गति के साथ श्री भगवान् के नाम का अथवा अपने गुरुमंत्र का जप करता रहे, उससे मन की चंचलता पर संयम तो होगा ही, वरन् उससे आध्यात्मिक लाभ कहीं ज्यादा होगा। आवश्यकता है तो केवल चलते, भागते, घूमते कार्य करते, उठते, बैठते समय नाम जप अथवा मंत्र जप करते रहने की। नाम जप की महिमा का वर्णन महाकवि महर्षि बाल्मीकि की जीवनी से मिलता है। 'उल्टा नाम जपा जग जाना बाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना' सत्य ही है। इसी तरह हर प्राणी ईश्वर प्रदत्त 'अजपा–जप' हर पल जप रहा है, परंतु उसे इसका आभास नहीं है।

15. ईश्वर–प्राणिधान साधना– अपने अपनत्व को ईश्वर को समर्पण कर देना ही 'ईश्वर–प्राणिधान' कहा जाता है। उसके गुण, रूप, नाम, महत्व, लीला, स्वरूप आदि का पठन, पाठन, गायन, कीर्तन, मनन, पूजा समस्त सत् कार्यों को ईश्वर को पूर्ण समर्पण करना ही श्रेयस्कर है। ऐसा करने से प्राणी का मन स्थिर हो जाता है। अपने जीवन के सब कार्यों को ईश्वर के आधीन रह कर ही करना श्रेयस्कर है।

16. मन के सभी कार्यों पर ध्यान देना – मन के प्रत्येक कार्य पर अगर हम दृष्टि से अवलोकन तथा मनन करेंगे तो मन निश्चय ही वश में रहेगा। मन से अलग होकर हमें अपने सभी कार्यों की समीक्षा ठीक उसी प्रकार करनी चाहिए जैसे आप दूसरों के कार्यों की आलोचना या चर्चा किया करते हैं। ऐसा करने से आप अपने मन को अवश्य वश में कर सकेंगे।

बुद्धि एक विश्लेषण : काण्ट एवं योग के परिप्रेक्ष्य में

रमेश सिंह, प्राचार्य इन्दिरा गाँधी गर्ल्स डिग्री कॉलेज, गोरखपुर

पाश्चात्य दर्शन में अनुभववाद व बुद्धिवाद दो महत्वपूर्ण दार्शनिक धारायें हैं जो अपने-अपने ढंग से ज्ञान की उत्पत्ति पर प्रकाश डालती हैं। अनुभववाद बुद्धि को जहाँ निष्क्रिय मानता है तथा अनुभव को ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत मानता है वही बुद्धिवाद बुद्धि को ज्ञान का एक मात्र स्त्रोत मानता है। काण्ट ने अपने दर्शन में अनुभववाद व बुद्धिवाद का निष्पक्ष विश्लेषण किया है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दोनों एकांगी हैं। अनुभववाद का अन्तसन्देहवाद में होता है तथा बुद्धिवाद का अन्त अन्धविश्वास में होता है। इस सम्बन्ध में काण्ट का प्रसिद्ध कथन है कि – 'इन्द्रिय संवेदनों के बिना बुद्धि विकल्प पंगु है और बुद्धि विकल्पों के बिना इन्द्रिय संवेदन अन्धे हैं। हमारे ज्ञान में यथार्थता इन्द्रिय संवेदनों से आती है क्योंकि वे वास्तविक पदार्थों द्वारा उत्थापित किये जाते हैं। इसलिए इन्द्रिय संवेदनों के अभाव में यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। हमारे ज्ञान में जो अनिवार्यता व सार्वभौमता आती है वह बुद्धि से आती है। अत: ज्ञान के लिए इन्द्रिय संवेदन व बुद्धि विकल्प दोनों अनिवार्य हैं।

ज्ञान का स्वरूप बाहर से नहीं आता। ज्ञान का स्वरूप सार्वभौम, निश्चित और अनिवार्य है और इसलिए इन्द्रियानुभव निरपेक्ष है। किंतु इन अनुभव निरपेक्ष सार्वभौम नियमों को भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनुभव सापेक्ष होना पड़ता है। ये अनिवार्य नियम बीज रूप से बुद्धि क्षेत्र में विद्यमान रहते हैं। इनको विकसित करने के लिए इन्द्रियानुभव रूपी खाद-पानी की आवश्यकता है। इन्द्रियानुभव इन बीजों को उत्पन्न नहीं करता, केवल विकसित करता है। बुद्धि के सहज व अनुभव निरपेक्ष नियमों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनुभव की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धि के सहज, सार्वभौम व अनिवार्य नियम उत्पत्ति की दृष्टि से अनुभव निरपेक्ष व अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनुभव सापेक्ष हैं। इस सन्दर्भ में काण्ट की प्रसिद्ध उक्ति है कि 'समस्त ज्ञान का आरम्भ अनुभव से होता है, किंतु उसकी उत्पत्ति अनुभव से नहीं होती।'

बुद्धि इन्द्रिय संवेदनों को निष्क्रिय होकर ग्रहण नहीं करती। बुद्धि कोरा कागज नहीं है। बुद्धि अपने सहज नियमों से इन्द्रियानुभव को व्यवस्थित करके उसे सार्वभौम ज्ञान का रूप देती है। दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में काण्ट का यह मत कॉपरनिकस जैसी क्रान्ति माना जाता है। काण्ट से पहले अनुभव वादियों की यह मान्यता थी कि बुद्धि निष्क्रिय होकर इन्द्रिय संवेदनों को ग्रहण करती है। यह हमारे ज्ञान की प्रकृति निर्मित करती है। हमारा ज्ञान अनुभव की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसके विपरीत काण्ट ने बताया कि बुद्धि सक्रिय

होकर इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित व नियमित करती है। बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है। प्रकृति के अस्त–व्यस्त, अव्यवस्थित क्षणिक संवेदनों को एकत्रित करके उनको व्यवस्थित ज्ञान के रूप में परिणत करना मानवी बुद्धि का ही कार्य है। प्राकृतिक नियमों में जो सार्वभौमता व अनिवार्यता है वह बुद्धि से ही सम्भव है। इस सम्बन्ध में काण्ट का प्रसिद्ध कथन है: 'बुद्धि प्रकृति का निर्माण करती है' (Understanding makes nature)

बुद्धि का कार्य समन्वय करना है। अब प्रश्न उठता है कि बुद्धि यह कार्य किस माध्यम से करती है। यह समन्वय जिन माध्यमों से किया जाता है उन्हें विकल्प, धारणा या कोटियाँ कहते हैं। ये बुद्धि के साँचे हैं जिनमें ढक कर इन्द्रिय संवेदन ज्ञान का रूप लेते हैं। कुल बारह विकल्प या धारणायें हैं क्योंकि न्याय वाक्य बारह प्रकार के होते हैं। बारह न्याय वाक्यों को चार भागों में विभक्त करके प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत तीन–तीन न्याय वाक्य रखे जाते हैं। इसी प्रकार बुद्धि विकल्पों को भी चार भागों में विभाजित करके प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत तीन–तीन विकल्प रखे जाते हैं। न्याय वाक्यों के चार विभाग इस प्रकार किये जाते हैं– परिणाम वाचक, गुण वाचक, सम्बन्ध वाचक और प्रकार वाचक। इनके बारह भेदों को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है–

(क) परिणाम वाचक

1. पूर्ण व्याप्ति बोधक
2. अपूर्ण व्याप्ति बोधक
3. एकात्मक

(ख) गुणवाचक

4. भावात्मक
5. अभावात्मक
6. सीमित

(ग) सम्बन्धवाचक

7. निरपेक्ष
8. सापेक्ष
9. वैकल्पिक

(घ) प्रकार वाचक

10. सम्भावित
11. प्रतिपन्न
12. आवश्यक

इन बारह न्याय वाक्यों के अनुसार बुद्धि विकल्प निम्नलिखित है–

(क) परिमाणवाचक

1. पूर्णता
2. अनेकता
3. एकता

(ख) गुणवाचक

4. सत्ता
5. अभाव
6. सीमा

(ग) सम्बन्धात्मक

7. द्रव्य गुण सम्बन्ध
8. कार्यकारण सम्बन्ध
9. अन्योन्य सम्बन्ध

(घ) प्रकारात्मक

10. सम्भावना–असम्भावना
11. भाव–अभाव
12. अनिवार्यता – आगन्तुकता

इस प्रकार न्याय वाक्यों के आधार पर बारह विकल्पों की स्थापना करने को काण्ट ने 'न्याय वाक्यों के आधार पर बुद्धि विकल्पों की स्थापना' (मेटाफिजिकल डिडक्शन ऑफ द कैटेगरिज) कहा है। इसमें कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं– पहला, इन बारह विकल्पों में पहले के छ: विकल्प अचल हैं व वस्तुओं के स्वभाव को बताते हैं तथा शेष छ: चल हैं वे वस्तुओं के परस्पर सम्बन्धों या वस्तुओं व बुद्धि के सम्बन्धों को बताते हैं। द्वितीय, प्रत्येक विभाग के अन्तर्गत तीन विकल्प आते हैं। इन तीन विकल्पों में तीसरा विकल्प पहले व दूसरे विकल्प के मिश्रण से बनता है किंतु यह योग मात्र नहीं है। यह बुद्धि का एक स्वतंत्र कार्य है। इस प्रकार एक नवीन विकल्प है। तृतीय, इन चारों विभाग में सम्बन्धात्मक विभाग सबसे प्रधान है क्योंकि बुद्धि का मुख्य कार्य सम्बन्ध उत्पन्न करना ही है। चतुर्थ, इन चार विभागों से काण्ट ने चार बातों का खण्डन किया है– परिणाम से अणुवाद का, गुण से शून्य का, कार्यकारण सम्बन्ध से संयोग या भाग्य का, व प्रकार से चमत्कार का खण्डन किया है। पंचम ये बुद्धि विकल्प इन्द्रिय संवेदनों को नियमित करके उनको ज्ञान का रूप देते हैं।

इस प्रकार हमारा सारा व्यावहारिक ज्ञान बनता है। बुद्धि विकल्पों का कार्य व्यवहार

तक ही सीमित है, इनकी गति परमार्थ तक सीमित नहीं है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बुद्धि विकल्पों में संवेदनों को ज्ञान का रूप देने की शक्ति है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह शक्ति बुद्धि विकल्पों की अपनी है या किसी अन्य वस्तु से आती है? इस प्रश्न के उत्तर में काण्ट का कहना है कि बुद्धि विकल्प संवेदनों को ज्ञान का रूप देने के साँचे हैं, उनमें स्वयं शक्ति नहीं है। काण्ट कहता है कि बुद्धि विकल्पों में शक्ति विशुद्ध आत्मा से आती है। आत्मा के प्रकाश से बुद्धि विकल्प प्रकाशित होते हैं तथा इसी के शक्ति से संवेदनों को ज्ञान का रूप देते हैं। इस प्रकार काण्ट ने यह सिद्ध किया है कि बुद्धि विकल्प आत्मा की शक्ति के आधार पर इन्द्रिय संवेदनों को व्यवस्थित ज्ञान का रूप देते हैं। यदि बुद्धि विकल्प न हो तो कोई भी वस्तु हमारे ज्ञान का विषय नही बन सकती। किंतु इस विवेचन से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि हमारे ज्ञान के लिए इन्द्रिय संवेदन बहुत आवश्यक है। इन्द्रिय संवेदन से सामग्री प्राप्त होती है जिसे ज्ञान का रूप दिया जा सकता है। यदि संवेदन नहीं होंगे तो सामग्री कहाँ से आयेगी तथा किसे ज्ञान का रूप दिया जायेगा। इसके अभाव में बुद्धि विकल्प शून्य होंगे। जब तक साँचों में ढलने की सामग्री नहीं होगी, ये साँचे बेकार होंगे। अतः काण्ट के मतानुसार हमारा सारा ज्ञान इन्द्रिय संवेदनों के व्यवहार तक ही सीमित है। अन्तेन्द्रिय पदार्थ अज्ञेय है। यही हमारे ज्ञान की सीमा है।

भारतीय सन्दर्भों में योग दर्शन में बुद्धि के विश्लेषण पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होता है कि बुद्धि संज्ञा का इस दर्शन में प्रयोग कम ही मिलता है। यहाँ बुद्धि का अन्तर्भाव चित्त में कर दिया गया है तथा चित्त का बहुत ही गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। चूँकि योग दर्शन एक क्रियात्मक अनुशीलन है अतः यहाँ साधक अभ्यास द्वारा ही चित्त शोधन करके अपने स्वरूप में स्थित होता है। यहाँ प्रकृति का प्रथम विषम परिणाम महत्व है। सत्वगुण में रजोगुण का क्रिया मात्र तथा तमोगुण का स्थिति मात्र का विषम परिणाम महत् तत्व है। इसमें सत्व गुण प्रधान रजोगुण व तमोगुण का किंग मात्र रहता है। यही किंग है व सृष्टि के नियमों का बीज रूप है। इसी से समस्त सृष्टि का उद्भव होता है। यह योग दर्शन के अनुसार समष्टि तथा व्यष्टि चित्त और सांख्य के अनुसार समष्टि तथा व्यष्टि बुद्धि है। वेदान्त में चेतन तत्व की महत्तत्व (समष्टि चित्त) के सम्बन्ध में 'हिरण्य गर्भ' और व्यष्टि चित्त के सम्बन्ध में 'तेजस' संज्ञा मिलता है। यह चित्त व्यक्ति रूप से पुरुष को गुणों का साक्षात्कार कराने का साधन है। कहीं–कहीं मन, बुद्धि व अहंकार को चित्त के ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है तथा कहीं इसे चार प्रकार की वृत्ति भेद से 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहा गया है। संकल्प–विकल्प करने से मन, अहंभाव प्रकट करने से अहंकार, निर्णय करने से बुद्धि तथा स्मृति से चित्रित होने से चित्त कहा जाता है।

सांख्य में महत्तत्व के लिए बुद्धि तथा योग में चित्त शब्द का प्रयोग किया गया है। सांख्य में बुद्धि में चित्त को तथा योग में चित्त में बुद्धि को सम्मिलित कर लिया गया है। चूँकि

सांख्य सिद्धान्त परक है। अतः इसमें बुद्धि द्वारा सभी पदार्थों का विवेक पूर्वक निर्णय किया जाता है। योग क्रियात्मक है, अतः इसमें चित्त द्वारा अनुभव करना या साक्षात्कार करना बताया जाता है। चित्त में ही सुख-दुःख, मोहादिरूप सत्व, रजस व तमस के परिणाम होते हैं। चित्त में ही अहंकार बीज रूप से रहता है।

यहाँ यह देखना काफी रोचक है कि काण्ट बुद्धि विकल्प को जड़ मानता है। इसमें कोई शक्ति नहीं होती। इसमें शक्ति व प्रकाश विशुद्ध आत्मा से आती है। योग दर्शन में भी चित्त (बुद्धि), जड़ है क्योंकि यह प्रकृति का ही परिणाम है और प्रकृति जड़ है। इस बिन्दु पर काण्ट व योग दर्शन में अद्भुत साम्य है। इसके अतिरिक्त दोनों में भिन्नता है। काण्ट के मतानुसार बुद्धि विकल्पों से हमें केवल व्यवहार जगत का ही ज्ञान प्राप्त होता है। पारमार्थिक तत्वों तक बुद्धि विकल्पों की गति नहीं है। किंतु योग दर्शन में चित्त गुणों का साक्षात्कार कराने का साधन है। चित्त क्रमशः अपनी विभिन्न अवस्थाओं – मूढ़ावस्था, क्षिप्तावस्था, विक्षिप्तावस्था एकाग्रावस्था व निरुद्धावस्था में उच्चतर भूमि को प्राप्त होती जाती है।

एकाग्रावस्था को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। इसमें प्रकृति के सभी कार्यों अर्थात् गुणों के परिणामों का पूर्णतया साक्षात्कार हो जाता है। इसी को विवेक ख्याति भी कहते हैं। विवेक ख्याति में चित्त व पुरुष के भेद का साक्षात्कार हो जाता है। इसके पश्चात् उस ख्याति से भी वैराग्य उदय होता है जिसे पर-वैराग्य कहते हैं। विवेक ख्याति भी चित्त की ही एक वृत्ति है। इस वृत्ति के भी निरुद्ध होने पर सभी वृत्तियों के निरोध होने से चित्त की निरोधावस्था होती है। इस निरोधावस्था में भी पर-वैराग्य के संस्कार मात्र शेष रहते हैं। इस अवस्था में किसी भी प्रकार की वृत्ति नहीं रहती है तथा अविद्यादि पाँचों क्लेश सहित कर्माशय रूप जन्मादि के बीज नहीं रहते। अतः इसे असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि भी कहते हैं। इसमें पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

▣▣▣

अभिनो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्।

इन्दो सहस्त्रभर्णसं तु विद्युम्नं वि भास हम।।

-ऋग्वेद

हे जीवात्मन्! तू परमेश्वर को प्राप्त कर जो हमें अन्न, ज्ञान और बल देता है, सबका भरण-पोषण और रक्षण करने वाला है, जिसका ऐश्वर्य और यश अपार है जो बड़ों-बड़ों के अहंकार को पराजित करने वाला है।

श्री गीतामृत – पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

परे बुद्धि के उसे जानकर, स्वयं करो तुम आत्म–दमन।
काम–रूप इस दुर्जय रिपु का, हे अर्जुन! तब करो शमन।।43।।

अध्याय – 4

श्रीभगवानुवाच

सूर्य देव को अमर योग यह, मैंने अर्जुन बतलाया।
रवि से मनु ने, मनु से फिर, इक्ष्वाकुदेव ने यह पाया।।1।।

जान गए राजर्षि लोग तब, परम्परा से उत्तम योग।
बीता समय अधिक जब अर्जुन! नष्ट हुआ इसका उपयोग।।2।।

वही पुरातन योग तुम्हें अब, हे अर्जुन! मैं बतलाता।
भक्त, मित्र हो मेरे, तुमको, अतः भेद यह समझाता।।3।।

अर्जुन उवाच

इधर तुम्हारा जन्म हुआ है, सूर्य देव का तुमसे पूर्व।
कैसे जानूँ, कहा सूर्य से, पहले तुमने योग अपूर्व।।4।।

श्रीभगवानुवाच

जन्म अनेक तुम्हारे–मेरे, बीत चुके हैं पहले तात।
मुझको तो वे याद सभी हैं, तुम्हें नहीं हैं कुछ भी ज्ञात।।5।।

यद्यपि जन्म–रहित अविनाशी, जगदीश्वर मैं कहलाता।
निज माया से प्रकृति–अधिष्ठित, जन्म ग्रहण कर मैं आता।।6।।

इस जग में जब–जब हे अर्जुन! घट जाता है धर्म कभी।
बढ़ जाती है धर्म–हीनता, लेता हूँ मैं जन्म तभी।।7।।

साधु जनों की रक्षा करने, दुष्टों का करने संहार।
धर्म–स्थापन करने जग में, आता हूँ युग–युग में तात।।8।।

जन्म, कर्म हैं दिव्य हमारे, इनका रखकर समुचित ज्ञान।
देह त्याग नर जन्म न लेता, आ मिलता मुझमें, तू जान।।9।।

राग–क्रोध–भय हीन सदा वे, जिन्हें ध्यान, आश्रय मम एक।
मिलें तपस्या से पवित्र हो, मुझमें ज्ञानी पुरुष अनेक।।10।।

जो जैसे भजता है मुझको, वैसा फल मुझसे पाता।
किसी मार्ग से जाए कोई, मेरे ही पथ में जाता।।11।।

कर्म–फलेच्छा से देवों की पूजा करते यहाँ सभी।
क्योंकि जगत् में फल मिलने में, होता नहीं विलम्ब कभी।।12।।

किया भेद से गुण–कर्मों के, चारों वर्णों का निर्मान।
यह सब करने पर भी मुझको, अमर–अकर्ता ही तू जान।।13।।

कर्म नहीं छूते हैं मुझको, फल की इच्छा मुझे नहीं।
यों जो मुझे जानता उसको, कर्म न सकते बाँध कहीं।।14।।

यही जानकर मुमुक्षुओं ने, किया पूर्व में कर्म सभी।
जैसे पहले किया गया है, करो पार्थ! वह सब तुम भी।।15।।

कर्म, अकर्म किसे कहते हैं, नहीं जानते ज्ञानी भी।
तुझे कर्म बतलाता, जिससे हट जाएँगे पाप सभी।।16।।

कर्म जानना तुझे उचित है, औ' विकर्म का रखना ध्यान।
उचित जानना है अकर्म भी, गहन कर्म की गति, यह जान।।17।।

कर्म–शून्यता कर्मों में जो, कर्म अकर्मों में लखता।
सब कर्मों का करने वाला, योगी ज्ञान वही रखता।।18।।

अभिलाषा, संकल्प–रहित, आरब्ध सभी हैं जिसके काम।
ज्ञानानल में कर्म तपाकर, पाता वह पण्डित का नाम।।19।।

फलासक्ति कर्मों की तजकर, सदा तृप्त औ' आश्रयहीन।
करता कुछ भी कर्म नहीं वह, यद्यपि सदा कर्म में लीन।।20।।

(शेष अगले अंक में)

कामाख्या की यात्रा में सत्संग लाभ

डा. विजय सिंह

कई छोटे बड़े पुलों पर कभी धीरे कभी धड़धड़ाती ट्रेन लगभग साढ़े पाँच बजे कामाख्या स्टेशन पर पहुँची। महानुभाव के साथ ही मैं ट्रेन से उन्हें विदा करने की औपचारिकता निभाने हेतु नीचे उतरा। चतुर्दिक प्रकृत के मनोहारी दृश्य को देख मन प्रफुल्लित हो उठा। छोटा मुनमुना सा साफ–सुथरा स्टेशन उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा पहाड़ियों से घिरा हरा–भरा जून के महीने में भी शीतल बयार शरीर को श्रमहीन बनाने लगा। मन में सतोभाव अपने आप जगा हुआ था। श्री सद्‌गुरु की कृपा–भाव में मन स्वतः ओत–प्रोत हो रहा था। तभी महानुभाव ने उत्तर दिशा की एक ऊँची पहाड़ी पर अवस्थित माँ कामख्या के मंदिर की ओर इशारा कर भाव विभोर मुद्रा में बार–बार प्रणाम करने लगे। प्रेरित हो मैंने भी प्रणाम किया। वे बोले जब गोहाटी अपने सुपुत्र से मिलने आये ही हैं तो अवश्य माँ का दर्शन करियेगा। जागृत शक्ति पीठ है। मैंने कहा श्रीमन् जैसी श्री सद्‌गुरु की इच्छा यदि वे चाहेंगे तो अवश्य यह सौभाग्य प्राप्त होगा। मेरा आपको हार्दिक धन्यवाद, यात्रा मंगल–मय सतोभाव में आपके सानिध्य से व्यतीत हुआ। मैं तो लगभग अठारह दिन बाद के रिजर्वेशन से गोरखपुर लौटूंगा। गोहाटी के पास के दर्शनीय स्थलों को देखने की अभिलाषा है।

वे बोले तीस घंटे के सहयात्रा में आपसे जो आदर मिला एवं सत्संग हुआ, अब विलग होने में दुःख का संचार कर रहा है। मैंने कहा– श्रीमन् आप भाव प्रधान हैं। सद्‌गुरु कृपा से ही मुझे आप जैसे साधना प्रवीण का साथ मिला था। हमारे सद्‌गुरु विश्वेश्वर हैं। कभी का हमारा आपका संस्कार भुगतान में आया है। अभी बाकी होगा तो हो सकता है पुनः कहीं भेंट हो जाये। हमने विनयावत हो उनको विदा किया। आश्चर्य ट्रेन लगभग पन्द्रह मिनट से इस छोटे स्टेशन पर रुकी है। पन्द्रह बीस मिनट में अगला स्टेशन गोहाटी आना है। परन्तु ट्रेन शक्ति पीठ से चलना ही नहीं चाहती। समय के साथ रात्रि का आगमन हुआ। डेढ़ घण्टा बाद ट्रेन गोहाटी के लिए प्रस्थान किया। रात्रि में जगमगाते फैंसी बाजार (फाँसी बजार, बन तीर्थ आसाम, आनन्दकन्द योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज द्वारा स्वहस्त लिखित चरित्र पढ़े) से होकर गोहाटी पहुँचे। रात्रि के अंधकार ने प्रकृति के मनोरम रूप पर अपनी काली चादर फैला दिया। रात्रि दस बजे नौरंगिया चि. रजनीश के क्वार्टर पर पहुँचे।

चूँकि आसाम प्रांत के बारे में श्री महाप्रभु जी द्वारा स्वहस्त लिखित चरित्र एवं कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें साथ थी अतः दिन में जब बेटे ऑफिस जाते तो नीरव एकान्त में इन्हीं ग्रंथों का स्वाध्याय करता। असमी भाषा का ज्ञान न होने के कारण कुछ दिनों काफी कठिनाई

हुआ। स्वयं आनन्दकन्द श्री महाप्रभुजी ने अन्दर तीर्थ आसाम देश की यात्रा में भाषा सम्बन्धी दिक्कत का स्वयं वर्णन किये हैं।

लिखते हैं – एक बार हम आसाम में गये वहाँ जाकर अपने प्रभु (भगवान सदाशिव) की खोज में लग गये। किसी ने बताया कि ब्रह्म पुत्र के पार उतर कर तीन कोस पर एक गाँव है, उसमें एक महात्मा रहता है, उसका गणक नाम है, तब जो आदमी मेरे साथ थे उनको सबको गुहाटी शहर में एक फाँसी बजार है उसमें छोड़ गया। (आज फैंसी बाजार अत्यन्त विशाल एवं चहल–पहल से युक्त मार्केट है आतंकियों के निशाने पर रहता है कई बार बम–विस्फोट में दजर्नों व्यक्ति काल कलवित हो चुके हैं।)। एक व्यक्ति को साथ लेकर वहाँ चले गये दो घण्टे दिन था। उनके घर जा पहुँचे, उन लोगों ने बड़ा सत्कार किया और आदरपूर्वक बिठा लिया। तब बहुत से पुरुष–स्त्रियाँ आकर एकत्रित हो गये, वे आकर कुछ पूछे हम कुछ कहें। न वे हमारी समझे न हम उनकी समझें। उस समय हमें यह प्रतीत हुआ कि बहुत से स्त्री पुरुषों में हम दो जानवर बैठे हैं।

तब वे एक अस्सी वर्ष की वृद्ध स्त्री को जो सब तीर्थ कर आई थी उसे लाकर हमारे पास बिठा दिया। वह भी आकर बातें करने लगी, हम उसकी कुछ न समझे। इतने में सायंकाल हो गया तब उन्होंने एक पत्ते में चावल, दाल तेल और एक पत्ते में गजभर लम्बी मछली साथ छुरी के लाकर आगे रख दी। (आज भी आसाम में सामिष भोजियों का बाहुल्य है)। तब हम पीछे हटे और हाथ से इशारा करके कहने लगे कि हटाओ–हटाओ उन्होंने वह तो हटाली और हमारे सामने गौओं का दूध दुहने लगे, उन्होंने चार गौ दुहीं आधा सेर दूध हुआ। वह आधा सेर लेकर हमारे आगे रख दिया तब हमने सोचा कि खबर नहीं कि यह आधा सेर दूध किस–किस काम में लाते होंगे। हम तो आठ पहरी भोजन पाते थे। हमें कुछ जरूरत भी न थी। यह विचार कर मैंने दूध ग्रहण नहीं किया। तब वे लोग रोने पीटने लगे। जब हमने देखा कि सब लोग रोते हैं तो मैंने उस वृद्धा स्त्री से पूछा ये क्यों रोते हैं? उसने हाथों के इशारे से मुझे बतला दिया। तब मैंने देखा कि उनके मकान में केले लगे हुए हैं। हमने केलों की तरफ हाथ किया, लगभग 100 वर्ष पूर्व किया गया यात्रा विवरण आज के परिप्रेक्ष में। उस वृद्धा स्त्री ने केले उतार कर हमें दे दिये, हम केले खाने लगे तब वे लोग रोने से बन्द हो गये और ढोलकिये और छैने बजाने लगे, सब रात्रि उन्होंने इसी उत्सव में व्यतीत कर दी, तब मैंने सोचा कि इस तरह यहाँ रहना अच्छा नहीं है। तब हम वहाँ से चलने लगे तो उन्होंने हमें आकर रोका। जब हम नहीं रुके तब उन्होंने कोई दो आना कोई एक आना रख–रख कर परिक्रमा करने लगे।

हमारे आगे पाँच सात रुपये हो गये, मैंने वे ही उठाकर उनकी लड़कियों को देकर वहाँ से चल दिये। अतिथि पूजन हो तो ऐसे हो।

पुनः एक दो भाषिये (जो हिन्दी–आसामी जानता था) को लेकर वहाँ गये वह दो दिन

श्री महाप्रभुजी के साथ रहा। दो भाषिया श्री प्रभु जी के बातों को उन्हें समझाया और उनकी बातें श्री प्रभुजी को बताया। श्री प्रभुजी कहते हैं- फिर हम आठ दिन रह कर जान लिया कि यह कुछ मंत्र यंत्र जानता है, फिर हमने उससे पूछा कि तुम जानते हो कि कोई योगाभ्यासी महात्मा तुम्हारे देश में कहीं रहते हैं। तब उस गणिक ने कहा कि यहाँ से सौ कोस पर एक महात्मा रहते हैं आप वहाँ जा नहीं सकते उस रास्ते में बड़े भयंकर वन हैं। जंगली भैंसे मनुष्य को मार देते हैं। हाथियों का वन महान है और मंत्र – यंत्र की भरमार है और हजारों नदियाँ हैं जो कोई पुरुष वहाँ गया फिर वापस नहीं आया, आप वहाँ न जाइये।

हमने कहा, इन बातों का हमें भय नहीं है तुम हमें पूरा पता, वहाँ का बताओ। तब उसने कहा कि रास्ते में अमुक–अमुक गाँव होकर एक मयं नाम का गाँव है वहाँ का राजा रणसिंह है उसके राज्य में वह महात्मा रहते हैं। वो पूर्ण योगाभ्यासी हैं। तुम उनके वास्ते जान देना चाहते हो तो चले जाओ।

इन्वर्टर ठीक करने एक मिस्त्री आया हुआ था। नौजवान आसामी हिन्दी बोल सकता था। हमने बातों–बातों में मयं गाँव की चर्चा की तो वह विचित्र आँखों से मुझे घूरता हुआ कहा वह गाँव में अब भी कुछ तंत्र–मंत्र करने वाले हैं। हमने पूछा वे क्या करते हैं उसने कहा एक बार कुछ पढ़े–लिखे लोग वहाँ जाकर मांत्रिकों से कुछ चमत्कार दिखाने को कहा। एक वृद्ध मना करता रहा छोड़ो बाबू क्यों कर मंत्र का प्रयोग देखना चाहते हो। नहीं मानने पर उसने ऐसा मंत्र प्रयोग किया कि जिस मूढ़े पर बाबू बैठे थे वह मूढ़ा उनसे चपक गया। प्रयास करके हार गये। साथ गये लोगों ने बहुत जोर अजमाया परंतु ऐसा हुआ कि मानों वह बैठने का मूढ़ा उसके शरीर का ही अंग हो गया हो। मैंने उत्सुकता से पूछा फिर क्या हुआ? मैकेनिक ने कहा होना क्या था? पैसे रुपये मनमानी वसूल कर तब उल्टा मांत्रिक उपचार करके उसे मुक्त किया।

मैं उसको कहा– तुम हमारे साथ चलोगे क्या? वह बोला बाबूजी वहाँ हम क्या हमार बाप भी न जाय। चि. रजनीश एवं उनके डायरेक्टर ने मुझे वहाँ ले चलने का वायदा किया परंतु काम की व्यस्तता से न जा सके। आगे हमारे लौट आने पर वे लोग ऑफिस कार से वहाँ गये थे। अभी इसी वर्ष भाई प्रो. विष्णुदत्त शर्मा जी गौहाटी आई.आई.टी. में सेलेक्शन करने गये थे तो वे भी उस गाँव का भ्रमण कर आये। अब विकास हो गया है। मोटर–कार का यातायात साधन और भौतिक वादी विचार जैसे सब जगह अपना पैठ बना लिया है वही हाल मयं गांव का भी है। एक मंत्रविद से पूछने पर वह बताया कि अब पहले वाली बात नहीं रही। मंत्र साधना में उठाने वाला कष्ट नई पीढ़ी में नहीं है अतः वह विद्यायें लुप्त प्राय हो चली हैं।

यथार्थतः इन काली विद्याओं (तामसिक) को नष्ट करने हेतु ही श्री महाप्रभुजी ने अपने युवा काल में किया था। नर भक्षिणी नदी पर मल्लाह द्वारा मंत्रोपचार एवं यंत्रोपचार

करने पर मुखराम एवं कृष्णानन्द द्वारा अपने को श्रीमहाप्रभुजी द्वारा रक्षा मंत्र जो विन्ध्याचल (शक्तिपीठ मिर्जापुर) में सिद्ध कराये थे उससे अपनी रक्षा करना तथा मुखराम द्वारा अत्यधिक पिटाई करने पर दयाद्र होकर श्री प्रभुजी द्वारा छुड़वाया जाना यह प्रदर्शित करता है कि तामसिक उपासना के द्वारा अर्जित–शक्ति साधक को आत्मोद्धार से बहुत दूर भटका देता है।

आसाम देश की यात्रा के पूर्व महाप्रभुजी ने विन्ध्याचल में मुखराम एवं कृष्णानन्द को तंत्र–मंत्र और अपनी रक्षा करने हेतु सिद्धि दायी मंत्र प्रदान किये थे। एक बात और श्री सद्गुरु जी द्वारा बताया गया था कि कालीखोह जो विन्ध्याचल से दक्षिण में स्थिति है वहाँ नरबलि चढ़ता था। उसे स्वयं महाप्रभुजी ने बंद कराया था। इस बात की पुष्टी एक वृद्ध पण्डे ने स्वयं किया कि पंजाब से आये एक नवयुवक महात्मा ने नरबलि चढ़ाने वाले तांत्रिकों को ताड़ना द्वारा चेताकर यह जघन्य कर्म सदा के लिये बन्द करा दिया। उसी प्रकार बनारस में भैरवी चक्र साधना वालों को दण्डित कर सद्मार्ग पर चलने का उपदेश दिये। नर्वदा तट पर के भैरव सिद्ध आदि को अपने शिष्य श्री हरिहरानन्द द्वारा मान–मर्दन कराके कुमार्ग से सुमार्ग पर आरूढ़ करवाये।

स्वहस्त लिखित चरित्र के प्रारम्भ में वर्णित योग महत्ता का प्रतिपादन करने वाले श्लोकों से विदित होता है कि योग को छोड़कर अन्य–पथ योग–मार्ग में आरूढ़ कराने में सहायक हो सकते हैं। यदि कोई उन बातों एवं कर्मों में ही उलझा रह गया तो परम पुरुषार्थ जो मात्र योग से ही उपलब्ध होता है उसे प्राप्त नहीं कर सकेगा।

कैलासेऽतिशुभे शैले गौरी पृच्छति शंकरम्।
मुक्ति मार्गतु मेब्रूहि शीघ्र सिद्धि करं प्रभो।।

अति शोभित कैलाश पर जगदम्बा गौरी भगवान शंकर से पूछती हैं कि शीघ्र सिद्धि दाता मुक्ति मार्ग आप मुझसे कहें। भगवान शिव कहते हैं कि हे पार्वती। सद्ज्ञान के द्वारा पापियों की भी मुक्ति हो जाती है। मुक्ति हेतु कोई सत्य की प्रशंसा करते हैं व कोई तप शौच क्षमा की, कोई समत्व एवं आर्जवता को। कोई–कोई दान, श्राद्ध कर्म, उपासना व वैराग्य को उत्तम बताते हैं। मंत्र–योग, तीर्थ सेवन आदि विविध उपायों को भी मुक्ति के साधन बताते हैं।

इस प्रकार नाना विध विचारों में ग्रसित व्यक्ति पाप कर्मों से मुक्त होने पर भी (पुण्य फल शेष रहने के कारण) मोह में ही पड़े रहते हैं। जन्म–मरण के चक्र भोगते रहते हैं। शास्त्रों के अनेक विचारों का क्या अर्थ जिसके जानने पर सब कुछ जाना जाता है उसी का प्रयत्न करना सर्वथा उचित है।

योगशास्त्रमिदं गोप्यम् अस्माभिः परिभाषितम्।
सुभक्ताय प्रदातव्यं त्रैलोक्ये च महात्मने।।

भगवान शिव कहते हैं कि हमारा बताया योग मार्ग परम गोप्य है तीन लोक में किसी पवित्र विचार वाले भक्तात्मा को बतलाना चाहिए।

इन्हीं दिव्य प्रेरणादायक विचारों का स्वाध्याय एवं चिंतन करते हुए गोहाटी का प्रवास के एक–दो दिन व्यतीत हुए। लोगों ने बताया भगवती कामाख्या देवी का दर्शन हेतु अति भोर से ही लाइन लग जाती है। चार–पाँच घण्टे लाइन में खड़े रहने पर दर्शन का सुयोग मिलता है। भीड़ के प्रति मेरा मन उत्साहित नहीं होता अत: जैसी प्रभु की इच्छा होगी वही होगा।

▣ ▣ ▣

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति, पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता:।।

इस शरीर में एक अपने कर्म का फल भोग करता है और दूसरा भोग कराता है। दोनों ही हृदयाकाश और बुद्धि में प्रविष्ट हैं। इनमें एक (जीवात्मा) संसारी है, दूसरा (परमात्मा) असंसारी है। इसलिए ब्रह्मज्ञाता और गृहस्थ इन दोनों को छाया और आतप (धूप) के समान विलक्षण कहते हैं।

अपना जीवन श्री चरणों में जोड़ दिया

जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

(तर्ज समक्ष : रेशमी तलवार कुर्ता जाली का)

गुरु चन्द्रमोहन का , चोला मैंने ओढ़ लिया।
अपना जीवन श्री चरणों में जोड़ दिया।। टेक।।

क्या शुभ कर्म कमाऊं, जो चरणों से लग जाऊं,
धर्म की गठड़ी बनाऊं, जो तेरे मन बस जाऊं,
कि मुझको अपना ही लिया, अपना जीवन.........

पतित पावन गुरु जी, मेरे सोए भाग्य जगा दे,
ज्ञान दीप हैं योग द्वारे, दीप से दीप जला दे,
कि उजाला कर ही दिया, अपना जीवन ....

एक बार जो दर्शन पाता, वो आपका ही हो जाता,
ना मथुरा काशी जाता, तेरे दर पै डेरा जमाता,
कि दिव्य संस्कार दिया, अपना जीवन.........

एक अर्जी है गुरु जी, मुझको दूर न करना,
आप भी दूर ना जाना, जब मुझको हो मरना,
कि 'अधम' डोरी सौंप दिया, अपना जीवन...........

■■■

ओंकार के आश्रय से अमृत की प्राप्ति

'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है, यों समझकर इसकी उपासना करनी चाहिए ; क्योंकि यज्ञ में उद्गाता नामक ऋत्विज् 'ॐ' इस अक्षर का ही उच्चस्वर से गान करता है। उस ओंकार की व्याख्या की जाती है।

यह प्रसिद्ध है कि मृत्यु से डरते हुए देवताओं ने ऋक्, यजु: और सामरूप तीनों वेदों में प्रवेश किया–उनका आश्रय लिया। उन्होंने गायत्री आदि भिन्न–भिन्न छन्दों के मन्त्रों से अपने को ढक दिया–उन्हें अपना कवच बनाया। उन्होंने जो भिन्न–भिन्न छन्दों से युक्त मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित कर लिया, इसी से वे 'छन्द' कहलाये। जो आच्छादन करे, वही छन्द–यह 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति है।

जिस प्रकार मछली पकड़ने वाला धीवर जल के भीतर भी मछली को देख लेता है, उसी प्रकार देवताओं को मृत्यु ने उन ऋक्, साम एवं यजुर्वेद के मन्त्रों की ओट में भी देख– वहाँ भी उसने इनका पिण्ड नहीं छोड़ा। ये देवतालोग भी इस बात को जान गये; अत: ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रों से ऊपर उठकर ये स्वर में अर्थात् ओंकार में ही प्रविष्टि हो गये।

जब कोई ऋक् का–ऋग्वेद के मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह नि:संदेह 'ॐ' इस प्रकार ही उच्चस्वर से उच्चारण करता है। इसी कारण साम को और वैसे ही यजुर्वेद को जानने वाला भी 'ॐ' का ही गान करता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ है कि जो यह ओंकार रूप अक्षर अर्थात् उसका वाच्यभूत परमात्मा है, वही ऊपर बताया हुआ स्वर है; वही अमृत–मृत्यु से छुड़ाने वाला एवं भयरहित स्थान है। उसका आश्रय लेकर देवतालोग अमर और निर्भय हो गये। जो ओंकार को इस रूप में जानकर उसके अर्थभूतम अविनाशी परमेश्वर की स्तुति एवं उपासना करता है तथा एकमात्र इसी अमृतरूप, सर्वथा भयरहित एवं अविनाशी परमात्मा के स्वरूपभूत इस स्वर में प्रविष्ट हो जाता है–उसकी शरण में चला जाता है; वह उसमें प्रवेश करके उसी अमृत को प्राप्त कर लेता है, जिस अमृत को पूर्वोक्त प्रकार से देवताओं ने प्राप्त किया था।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

भिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर संदेश आच्छन्न (स्टाम्प कवर) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन : दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर भीतिसूचना बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के फर्शों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

NOVEMBER 2010

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंथरी (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंथरी (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा